67C21U



महाभारत-लेखन



संजय-धृतराष्ट्र-संवाद

```
ॐ पूर्णमदः पूर्णिमदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य
                                                          पूर्णमादाय
                                                                         पूर्णमेवावशिष्यते॥
वन्दे वन्दनतुष्टमानसमितप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलेश्वर्येकवासं शिवम्।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम्॥
```

संजय-धृतराष्ट्र-संवाद

व्यासप्रसादाच्छुतवानेतद् गुह्यमहं परम्। योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम्॥ राजन् संस्मृत्य संस्मृत्य संवादिमममद्भुतम्। केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः॥ तच्य संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः। विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः॥

गोरखपुर, सौर पौष, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, दिसम्बर २०१८ ई०

पूर्ण संख्या ११०५

तच्च संस्मृत्व संस्मृत्व रूपमत्वद्भुत हरः। विस्मवा म महान् राजन् हृष्याम च पुनः पुनः॥ यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्धुवा नीतिर्मितर्मम॥ [**संजय राजा धृतराष्ट्रसे कहते हैं**—हे राजन्!] श्रीव्यासजीकी कृपासे दिव्य दृष्टि पाकर मैंने इस

राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनके इस रहस्ययुक्त, कल्याणकारक और अद्भुत संवादको पुन:-पुन: स्मरण करके मैं बारम्बार हर्षित हो रहा हूँ। हे राजन्! श्रीहरिके उस अत्यन्त विलक्षण रूपको भी पुन:-

परम गोपनीय योगको अर्जुनके प्रति कहते हुए स्वयं योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णसे प्रत्यक्ष सुना है। हे

पुन: स्मरण करके मेरे चित्तमें महान् आश्चर्य होता है और मैं बारम्बार हर्षित हो रहा हूँ। हे राजन्! जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्णभगवान् हैं और जहाँ गाण्डीव-धनुषधारी अर्जुन हैं, वहींपर श्री, विजय, विभूति और

अचल नीति है—ऐसा मेरा मत है।[महाभारत-भीष्मपर्व]

कल्याण, सौर पौष, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, दिसम्बर २०१८ ई०		
विषय-सूची		
विषय पृष्ठ-संख्या	विषय पृष्ठ-संख्या	
१ - संजय-धृतराष्ट्र-संवाद	१५ - तीर्थराज प्रयाग (डॉ० श्रीशिवशेखरजी मिश्र, एम० ए०, पी-एच० डी०, डी०लिट्०)	
गीताभवन, ऋषिकेशमें हुए प्रवचनसे साभार)२९ ———	विषय-सूची४ ● ⊂	
चित्र-'	सूची	
१ - महाभारत-लेखन(रंगीन) आवरण-पृष्ठ २ - संजय-धृतराष्ट्र-संवाद('') मुख-पृष्ठ ३ - महाभारत-लेखन (इकरंगा) ६ ४ - अनियन्त्रित रथ ७	५ - शंखनाद करते अर्जुन और श्रीकृष्ण (इकरंगा) ६ - शोकग्रस्त अर्जुनको उपदेश देते श्रीकृष्ण ('') १ ७ - कौरवोंको समझाते श्रीकृष्ण ('') १ ८ - यदु - दत्तात्रेय - संवाद ('') ३	
जिय पावक रवि चन्द्र जयित जय	। सत-चित-आनँद भूमा जय जय ॥)	
एकवर्षीय शल्क जय जय विश्वरूप हरि जय	। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥ । गौरीपति जय रमापते॥ 50 (₹ 3000) {Us Cheque Collection	
संस्थापक — ब्रह्मलीन परम श्रद्धे आदिसम्पादक — नित्यलीलालीन १ सम्पादक — राधेश्याम खेमका, सहस् केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के	गईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार म्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़	
website: gitapress.org e-mail: kalya	n@gitapress.org 09235400242/244	

संख्या १२] कल्याण याद रखो — जीवनमें छोटे-बडे, नीचे-ऊँचे, अधम-सर्वथा अभाव हो जाता है। फिर सभीमें समभावसे उत्तम जितने भी जड-चेतन प्राणी हैं, सबमें भगवान भरे भगवदुबृद्धि रहती है, सभीके प्रति समान भावसे श्रद्धापूर्वक हैं, सभी भगवान्से ओतप्रोत हैं। उनकी आकृति-प्रकृतिमें, सेवाका अचरण होता है। किसीका बुरा करनेकी बात खान-पानमें, व्यवहार-बर्तावमें चाहे जितना भेद हो, पर मनमें कभी आ ही नहीं सकती। कहीं किसीसे कोई हानि उन सबके अन्दर नित्य समभावसे विराजमान भगवानुमें हो भी जाती है, तो भी मनमें वैसे ही उसपर क्रोध नहीं तिनक भी भेद नहीं है। होता, जैसे दाँतोंसे जीभ कट जानेपर दाँतोंपर क्रोध नहीं याद रखों — जो मनुष्य इन सर्वस्वरूप, सर्वव्यापी, होता। सर्वात्मा भगवान्की ओर देखता हुआ जगत्में व्यवहार *याद रखो*—भगवान्में स्थित रहकर अथवा करता है, उसके व्यवहारमें यथायोग्य व्यावहारिक विषमता सर्वात्मारूपसे विराजमान भगवान्की ओर देखता हुआ जो रहनेपर भी मनमें कोई विषमता नहीं रहती। वह समतामें जगत्में व्यवहार करता है, उसका प्रत्येक कर्म भगवान्की स्थित होकर वैसे ही विषम व्यवहार करता है, जैसे मनुष्य पूजा होता है। वही यथार्थमें सर्वरूपोंमें विराजमान भगवानुका आत्मरूपसे सर्वत्र समान देखता हुआ भी अपने ही हाथसे सर्वत्र पूजन कर सकता है। किसी भी देश, किसी भी दूसरे प्रकारका व्यवहार करता है और पैरसे दूसरे काल और किसी भी पात्रमें उसके भगवान् उसकी प्रकारका। पर उसके मनमें हाथ या पैर किसीके प्रति राग-आँखोंसे कभी ओझल नहीं होते, वह सर्वत्र उनको देख-द्वेष नहीं है। दोनोंमें ही समान आत्म-बुद्धि है। इसलिये देखकर श्रद्धावनत मस्तकसे प्रणाम करता है और उनकी व्यवहार कैसा भी हो, उससे जान-बूझकर न हाथका विचित्र स्वरूपाकृतियाँ और भावभंगिमाओंको देख-देखकर अपमान-अहित होता है, और न पैरका ही। इसी प्रकार मुग्ध होता रहता है। तुम यदि इस प्रकार सर्वत्र भगवानुको उस मनुष्यके द्वारा किसीका अपमान या अहित नहीं होता। देख सको तो तुम्हारा भी विषम व्यवहार समरूप याद रखो-जो मनुष्य मनमें विषमता रखता है, भगवानुकी समरूप पुजामें परिणत हो जायगा। अनेक प्रकारसे भेद-बृद्धि रखता है, पर बाहर सबको याद रखो-जगतुमें विषमता कभी मिट नहीं समान बताकर सबके साथ समान बर्ताव करना चाहता है, सकती। जगत् भगवान्का लीलाक्षेत्र है। लीलामें समता हो उसका यह साम्यभाव कभी सफल नहीं होता। क्योंकि जाय तो लीला ही न रहे। जगत्में यदि प्रकृति साम्यभावको भिन्न-भिन्न स्वभावोंके विभिन्न प्रकारके प्राणियोंसे ही प्राप्त हो जाय तो जगत् ही न रहे। अतएव भगवान्की लीलाके लिये चित्र-विचित्र विभिन्न भावों, गुणों, आकृतियों सभी प्रसंगोंमें समताका व्यवहार सम्भव ही नहीं है। बुद्धिमान् तथा श्रेष्ठ विचारवाले पुरुषोंके प्रति जितने और क्रियाओंकी आवश्यकता है, पर इन सारे भावों, गुणों, आदरका व्यवहार होगा, उतना मूर्ख और नीच विचारवाले आकृतियों और क्रियाओंमें सर्वत्र समभावसे भगवान् भरपूर पुरुषोंके साथ नहीं होगा। कुत्ते, गाय और हाथीके साथ हैं। जो इन भरपूर भगवान्को देखकर, पहचानकर जगत्में किसी भी क्षेत्रमें एक-सा व्यवहार सम्भव नहीं। साँप-व्यवहार करता है, उसमें जगत्की दृष्टिसे व्यावहारिक यथायोग्य विषमता रहते हुए ही उसका व्यवहार वस्तुत: बिच्छुके साथ वैसा व्यवहार तुम नहीं कर सकते, जैसा गाय-बकरीके साथ करते हो। परंतु व्यवहारमें विषमता समत्वपूर्ण होता है। वहीं सच्चा साम्यवादी है, जिसका रखते हुए भी आत्मरूपसे सबमें समान भाव रख सकते बाह्य विषम व्यवहार आभ्यन्तरिक समतासे उत्पन्न और हो। भगवत्-रूपसे मन-ही-मन सबको पूजनीय मानते हुए समतासे युक्त है। पर जो केवल बाहरसे सम व्यवहारका उनका सत्कार कर सकते हो। प्रयत्न करता है, अन्दर विषमता रखता है, वह तो समताका *याद रखो*—भीतरकी समता ही सच्ची समता है, रहस्य ही नहीं समझता। ऐसे विषमतासे उत्पन्न और क्योंकि उसके प्राप्त होनेपर राग-द्वेषका, अपने-परायेका विषमतासे युक्त साम्यवादसे सदा दूर रहो। 'शिव'

आवरणचित्र-परिचय महाभारत-लेखन



विषय और कलेवर-दोनों ही दृष्टियोंसे इसकी महत्ता सर्वमान्य है। भारतवर्षकी संस्कृति, सभ्यता अथवा आदर्शका प्राचीन चित्र देखना हो तो वह महाभारतमें

देखा जा सकता है। यह एक अगाध महासागरके समान है। इसके भीतर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थींसे सम्बन्ध रखनेवाले असंख्य उपदेशरत्न भरे

पड़े हैं। संसारकी सर्वमान्य पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीता भी इसी रत्नाकरका जाज्वल्यमान रत्न है। यदि महाभारतको हम सम्पूर्ण वेद, उपनिषद्, दर्शन, पुराण, धर्मशास्त्र,

कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी। इसीलिये इसके सम्बन्धमें कहा गया है—'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्

क्वचित्।' अर्थात् जो इस ग्रन्थमें है, वही नाना रूपोंमें

अर्थशास्त्र और मोक्षशास्त्रका एकमात्र प्रतिनिधि ग्रन्थ

सर्वत्र है; जो इसमें नहीं है, वह कहीं भी नहीं है। इस महान् ग्रन्थकी रचना भगवान् कृष्णद्वैपायन

वेदव्यासने की। उन्होंने तपस्या और ब्रह्मचर्यकी शक्तिसे वेदोंका विभाजनकर इस ग्रन्थका निर्माण किया और

यह विचार जानकर स्वयं ब्रह्माजी उनके पास आये और

बोले—'महर्षे! आपने अपनी वाणीसे सत्य और वेदार्थका कथन किया है, अत: आपके काव्यसे श्रेष्ठ काव्यका निर्माण जगत्में कोई नहीं कर सकेगा। आप अपना ग्रन्थ

लिखनेके लिये गणेशजीका स्मरण कीजिये।' यह कहकर ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये और व्यासजीने गणेशजीका भक्तवाञ्छाकल्पतरु गणेशजी प्रकट हुए। व्यासजीने

उनका पूजनकर प्रार्थना की, 'भगवन्! मैंने मन-ही-मन महाभारतकी रचना की है; मैं बोलता हूँ, आप उसे लिखते जाइये।'

गणेशजीने कहा, 'यदि मेरी लेखनी एक क्षणके लिये भी न रुके तो मैं लिखनेका काम कर सकता

स्मरण

किया।

करते

स्मरण

हूँ।' व्यासजीने कहा, 'ठीक है, किंतु आप बिना सोचे न लिखियेगा।' गणेशजीने 'तथास्तु' कहकर लिखना स्वीकार कर लिया। भगवान् व्यास कौतूहलवश कुछ ऐसे श्लोक बना देते थे कि सर्वज्ञ गणेशजीको

भी एक क्षणतक उनका अर्थ विचार करना पडता, उतनेमें ही महर्षि व्यास दूसरे बहुत-से श्लोकोंकी रचना कर डालते— सर्वज्ञोऽपि गणेशो यत् क्षणमास्ते विचारयन्।

तावच्चकार व्यासोऽपि श्लोकानन्यान् बहुनपि॥ (महा०आदि० १।८३)

इस प्रकार इस ग्रन्थका लेखन हुआ। इस ग्रन्थमें कुरुवंशका विस्तार, गान्धारीकी धर्मशीलता, विदुरकी प्रज्ञा, कुन्तीके धैर्य, दुर्योधनादिकी दुष्टता और पाण्डवोंकी

मनुष्योंको धर्मपूर्ण आचरण करते हुए भगवदाश्रित जीवन जीनेका सन्देश दिया है। इसकी प्रत्येक कथासे

सत्यताका वर्णन हुआ है। इसके माध्यमसे व्यासजीने

भगवान् श्रीकृष्णकी अनिर्वचनीय महिमा सोना। कि i इसे शिह्में को कैसे एहाईं https://dsczigg/dhakhfi है। MATE स्पर्ण भारिपां रेप BY Avinash/Sha मन-इन्द्रियोंको वशमें करके परमात्माको प्राप्त करें

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

मन-इन्द्रियोंको वशमें करके परमात्माको प्राप्त करें

कठोपनिषद्में शरीरको रथ, इन्द्रियोंको घोडे, मनको प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।

जाती है।'

लगाम, बुद्धिको सारथि, इन्द्रियोंके विषयोंको रथके चलनेका मार्ग और जीवात्माको रथी बतलाया गया है। परमात्मासे बिछुडे हुए जीवात्माको इसी रथके द्वारा विषयोंके मार्गपर चलकर ही परमात्माके धाम-अपने घर पहुँचना है। रथको घोडे ही चलाते हैं, परंतु घोड़े उच्छृंखल होकर उलटे मार्गपर भी चल सकते हैं और सीधे परमात्माके मार्गपर चल सकते हैं। जिस रथका सारिथ विवेकयुक्त, अप्रमत्त, स्वामीका आज्ञाकारी, लक्ष्यपर स्थिर, बलवान्, रास्तेका जानकार

संख्या १२]

और घोडोंको लगामके सहारेसे अपने वशमें रखकर— इच्छानुसार सन्मार्गपर चला सकता है, वह रथ अपने लक्ष्यपर पहुँच जाता है। इसी प्रकार जिस पुरुषकी बुद्धि विवेकसम्पन्न, जीवात्माको परमात्माके धाममें ले जानेके लिये तत्पर, परमात्मामें लगी हुई, मन-इन्द्रियोंको अपने वशमें रखनेवाली, सदा सावधानीके साथ सबको साधन-मार्गपर ले चलनेवाली होती है, वह पुरुष इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंमें विचरता हुआ भी—जैसे सत्-सारथिके द्वारा संचालित रथ मार्गपर चलकर लक्ष्यकी ओर बढता रहता है, वैसे ही परमात्माकी ओर बढ़ता रहता है। इन्द्रियाँ तथा मन यदि साधकके अपने वशमें हों और साधक उन्हें भगवत्सम्बन्धी विषयोंमें ही लगाये रखे तो इस प्रकार उन इन्द्रियोंका विषयोंमें विचरण करना हानिकारक नहीं है, प्रत्युत लाभदायक है; क्योंकि ऐसा करके वह परमात्माके समीप पहुँच जाता है। जबतक शरीर, इन्द्रियाँ और मन हैं, तबतक उनको विषयोंसे सर्वथा अलग कर देना सम्भव नहीं है, अतएव साधक उनमेंसे राग-द्वेषको हटाकर विशुद्ध बना ले और फिर उनका यथायोग्य साधनरूप विषयसेवनमें उपयोग करे। भगवान्ने कहा है— रागद्वेषवियुक्तैस्त् विषयानिन्द्रियशचरन्। आत्मवश्यैर्विधेयात्मा

यह है वशमें किये हुए मनसे राग-द्वेषरहित इन्द्रियोंके सद्विषयोंमें विचरण करनेका परिणाम! जिन मन-इन्द्रियोंके द्वारा इन्द्रिय-सुखकी आशासे विषयोंका उपभोग करके दु:खोंको निमन्त्रण दिया जाता है, उन्हीं मन-इन्द्रियोंसे उन्हें साधनमें लगाकर परमात्माकी प्राप्ति की जा सकती है; परंतु जिसकी बुद्धि असावधान है, निर्बल है, इन्द्रियोंके तथा मनके अधीन है, प्रमत्त है, लक्ष्यशून्य है और परमात्माको भूली हुई है; उसको यही

प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥

साधक अपने वशमें की हुई राग-द्वेषसे रहित इन्द्रियोंके

द्वारा विषयोंमें विचरण करता हुआ अन्त:करणकी प्रसन्नताको प्राप्त होता है। अन्त:करणकी प्रसन्नता

होनेपर इसके सम्पूर्ण दु:खोंका अभाव हो जाता है और

उस प्रसन्नचित्तवाले कर्मयोगीकी बुद्धि शीघ्र ही सब

ओरसे हटकर परमात्मामें ही भलीभाँति स्थिर हो

'परंतु अपने अधीन किये हुए अन्त:करणवाला

(गीता २। ६४-६५)

शरीर-रथ विपरीत मार्गमें अग्रसर होकर वैसे ही सर्वथा प्रसादमधिगच्छति॥

भाग ९२ पतनके गर्त्तमें गिरा देता है, अथवा किसी भयानक 'इसलिये हे महाबाहो! जिस पुरुषकी इन्द्रियाँ दुष्कर्मरूपी पत्थरोंसे भिडाकर मानव-जीवनको चूर-चूर इन्द्रियोंके विषयोंसे सब प्रकार निग्रह की हुई हैं, उसीकी कर डालता है, जैसे असावधान और निर्बल सारिथके बुद्धि स्थिर है।' द्वारा लगामको प्रचण्ड बलवाले घोडोंके अधीन छोड़ जिस प्रकार चतुर और सुयोग्य केवट नावको भँवरसे देनेपर घोडे उस रथको सारिथ और रथीसहित गहरे तथा प्रबल जलधारामें बहनेसे बचाकर, खास करके, पालके गड्टेमें डाल देते हैं, अथवा किसी दीवालसे टकराकर सहारेसे वायुको अनुकूल बनाकर सावधानीसे डाँड खेता हुआ मार्गपर अग्रसर होता रहता है तो नाव सुरक्षित अपने चकनाचूर कर डालते हैं। विचार करनेपर यह पता लगता है कि इन्द्रियाँ स्थानपर पहुँच जाती है। इसी प्रकार भ्रम-प्रमादादिसे स्वाभाविक ही बहिर्मुखी हैं। वे नित्य निरन्तर विषयोपभोग-रहित सुयोग्य एकनिष्ठ बुद्धि मन इन्द्रियोंसे युक्त शरीर-के लोभमें पड़ी हुई विषयोंकी ओर दौड़ती और मन-नौकाको राग-द्वेषरूपी भँवर तथा कामनारूपी तीव्रधार बुद्धिको भी बलपूर्वक खींचती रहती हैं। अत: उनको जलके प्रवाहसे बचाकर सत्संगरूपी पालके सहारेसे सदा-सर्वदा सावधानीसे मनके सहारेसे यानी मनको भगवत्कुपारूप वायुको अनुकूल बनाकर आगे बढती रहती है, तो वह सुरक्षित भगवानुके धाममें पहुँच जाता है। उनके साथ न जाने देकर वशमें रखनेका प्रयत्न करना अतएव साधकको चाहिये कि वह अपनेको शरीर,

चाहिये। इन्द्रियाँ वशमें न होंगी और मन उनका साथ देने लगेगा तो वे बुद्धिको वैसे ही विचलित कर देंगी, इन्द्रिय, मन, बुद्धिका स्वामी मानकर उनके वशमें न हो, जैसे जलमें पड़ी हुई नौकाको वायु डगमगा देती है। बल्कि इन्द्रियोंको पतनकारक तथा अनावश्यक उनके भगवानुने गीताजीमें यही कहा है— मनमानी विषयोंमें जानेसे रोककर, उनमें रहे हुए राग-इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते। द्वेषसे उन्हें छुड़ाकर मनको वशमें करे और बुद्धिको तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नाविमवाम्भसि॥ एकमात्र परमात्मनिष्ठ निश्चयात्मिका बनाकर परमात्मामें स्थिर कर दे। यथार्थत: ऐसा हो जानेपर तो मन-(२।६७)

'क्योंकि जैसे जलमें चलनेवाली नावको वायु हर

लेती है, वैसे ही विषयोंमे विचरती हुई इन्द्रियोंमेंसे मन जिस इन्द्रियके साथ रहता है, वह एक ही इन्द्रिय इस अयुक्त पुरुषकी बुद्धिको हर लेती है।' इसपर भगवान् कहते हैं—

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।

करके मानव-जीवनके परम लक्ष्य परम शान्ति और इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥ परमानन्दस्वरूप परमात्माको प्राप्त करे।

कहते हैं; तथा शरीर, इन्द्रिय एवं मनसे युक्त आत्माको 'भोक्ता' कहते हैं।'

परमात्मप्राप्तिका साधनरूप रथ-रथी-रूपक

इन्द्रियोंके द्वारा होनेवाले सभी कार्य सहज ही भगवत्-कार्य बन ही जायँगे। परंतु इसके पहले साधन-कालमें

भी इस आदर्शके अनुसार साधन करनेसे चित्तकी

प्रसन्नता—निर्मलता प्राप्त हो जाती है और उसके द्वारा

भगवत्प्राप्तिका मार्ग सुलभ और प्रशस्त हो जाता है। अत: साधकका कर्तव्य है कि वह इस प्रकार साधन

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु । बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् । आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥

(कठोपनिषद् १।३।३-४)

[धर्मराज भगवान् यम निचकेतासे कहते हैं—हे निचकेत:!] 'तू आत्माको रथी और शरीरको रथ जान तथा

बुद्धिको सारथि और मनको लगाम समझ। विवेकी पुरुष इन्द्रियोंको घोड़े बतलाते हैं और विषयोंको उनके मार्ग

गाताका प्रथम अध्याय (श्रीब्रह्मचारी महानामव्रतदास, एम०ए०, पी-एच०डी०) अमेरिकाके न्युयार्क शहरका एक विस्तृत कॉलेज— गन्ध भी नहीं है। गीता पढ़ते समय उसको न पढ़नेसे प्रोफेसरों और छात्रोंका विस्तृत जमघट—उसमें मैं भी चल सकता है।'

गीताका प्रथम अध्याय

हिन्दुधर्मपर भाषण दे रहा था। हिन्दुधर्मकी आलोचना 'आपने भूल समझा है। प्रथम अध्यायको बाद दे करते समय बातचीतके सिलसिलेमें एक अध्यापकने देनेपर तो गीता होती नहीं। प्रथम अध्यायमें भी दार्शनिक जिज्ञासा की और कहा—'आपके देशमें ईश्वरके सम्बन्धमें सिद्धान्त हैं। दर्शनकी भाषामें वहाँ वे नहीं हैं। पर काव्यकी भाषामें तो हैं।'

जो धारणा प्रचलित है, वह बड़ी ही प्राणहीन है।' (The conception of God in your country is very cold.) 'आपके कहनेका मतलब?'—मैंने प्रश्न किया। 'हाँ, आपका भगवान निराकार, निर्विकार, निर्विशेष, शब्दहीन, अस्पर्श, अव्यय और अरूप है—संक्षेपमें 'नहीं

संख्या १२]

है'-ऐसा कहनेसे ही चल सकता है। इस तरहके प्राणहीन भगवानुको लेकर क्या जीवनमें किसी भी प्रकारका धर्मकार्य किया जा सकता है?' 'आपने क्या हमारे किसी धर्मग्रन्थका स्वाध्याय किया है ?' मैंने प्रश्न किया। 'हाँ, स्वामी विवेकानन्दकी वक्तताएँ पढ़ी हैं।' 'किसी मौलिक ग्रन्थको भी पढ़ा है क्या?' 'भगवद्गीता भी पढ़ी है, पर अवश्य ही वह एनीबेसेंटका ॲंगरेजी अनुवाद था।' 'गीता पढ़कर भी अपकी धारणा हिन्दुओंके ईश्वरके सम्बन्धमें यही रही?' 'निश्चय ही, उससे तो वह धारणा और भी बढ़ गयी। 'मालूम होता है, आपने गीताको अच्छी तरह पढ़ा

ही नहीं। अच्छा, आपने गीताका प्रथम अध्याय पढ़ा है?' 'हाँ, पढ़ा है। पर प्रथम अध्यायमें पढ़नेके लायक तो कुछ है ही नहीं।' 'बहुत कुछ है। आपने यदि प्रथम अध्यायको

होती।

मनोयोगपूर्वक पढ़ा होता तो आपकी यह धारणा ही नहीं

'आप कहते क्या हैं? प्रथम अध्यायमें ऐसा क्या

रखा है ? यह तो भूमिकामात्र है। उसमें तो दार्शनिकताकी

दीजिये।' मैंने भाषण देना आरम्भ किया। एक विस्तृत युद्धक्षेत्र है, उसमें अठारह अक्षौहिणी सेना युद्धके लिये एकत्र हुई है। सब बड़े-बड़े योद्धा उसमें उपस्थित हैं। उनके नाम 'अत्र शूरा महेष्वासा' इत्यादि श्लोकोंद्वारा कवि हमें दुर्योधनके मुखसे सुना रहा है। युद्ध तुरंत ही आरम्भ होनेवाला है। रणभेरी बज उठी है। सब बड़े-

'मुझे तो कुछ भी समझमें नहीं आता, आप समझा



कर रहे हैं। अर्थात् ये शंख बजाकर इस बातकी घोषणा कर रहे हैं कि हम तैयार हैं, अब युद्ध आरम्भ किया

जा सकता है। युद्धके नगारे बज उठे हैं। 'स

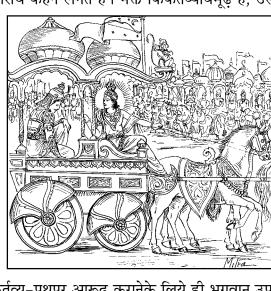
शब्दस्तुमुलोऽभवत्।' ऐसे समयमें एक पक्षके सेनापित कपिध्वज अर्जुन

अपने रथके सारिथ भगवान् ह्रषीकेशसे कहते हैं—देखो, अच्युत! रथको थोड़ा आगे बढ़ाकर दोनों सेनाओंके

भाग ९२ ***************** बीचमें ले चलो। एक बार मैं देख तो लूँ कि कौन-कौन करुणामूर्तिमें परिवर्तित हो गया। काव्य भी क्या ही वीर मुझसे लड़ने आये हैं। मैं उनके चेहरोंको एक बार चमत्कारपूर्ण है। भगवान् व्यासदेवने सात-आठ श्लोकोंमे अच्छी तरह देख लेना चाहता हैं।' ही एक सुदृढ लौह-पुरुषको कोमल नवनीतकी पुतली सेनापतिकी बातें बडी ही वीरताभरी हैं, ओजपूर्ण बना डाला है। दूसरे किसीको शायद ऐसा करनेमें सात-हैं। बातोंमें, शब्दोंमें दम्भ भी है, अहंकार भी है, घमंड आठ पन्ने रँगने पड़ते। भी है—अपने शौर्यपर पूर्ण विश्वास भी उनसे प्रकट हो 'श्रीकृष्ण! मैं युद्ध न कर सकूँगा। मुझे नहीं रहा है। मालूम होता है, वे अपने बलके सामने किसीकी चाहिये जय, नहीं चाहिये राज्य। मुझे सुखकी भी इच्छा परवा भी नहीं करते। वे कहते हैं—'देखूँ, दुर्बुद्धिके मारे नहीं - मैं भोग भी नहीं चाहता। मेरी इच्छा तो अब जीवित रहनेकी भी नहीं है। जिनको साथ लेकर मुझे धृतराष्ट्रके कौन-कौनसे पुत्र मुझसे लड़ने आये हैं। यह भी देखूँ कि कौन कितने सिर अपने धड़पर लेकर मेरे जीवनका सुख भोगना चाहिये, उन्हींसे लड़कर सुख सामने खड़ा है। मैं एक बार जी भरकर आँखोंसे देख प्राप्त करनेका-हीनकर्म मुझसे न होगा, मैं यह न कर तो लूँ। एक बार रथ आगे तो बढ़ाओ।' सकूँगा, मैं यह नहीं करूँगा।' ये ही बातें थीं, उस सारिथ हृषीकेशने वीर रथी अर्जुनके आदेशानुसार वीरपुंगवके मुखमें उस समय। दशा यहाँतक बिगड़ी कि रथको आगे बढ़ाया और बीचों-बीच ले जाकर बोले— बोलते-बोलते उसकी बोलनेकी शक्ति भी जाती रही। 'देखो, पार्थ! उपस्थित कौरवोंको अच्छी तरह देख धनुर्बाण हाथसे गिर पड़ा। रथी एक बार ही मुमूर्ष्-सा लो।' सारिथके शब्दोंमें बड़ा ही गूढ़ रहस्य भरा पड़ा होकर रथपर गिर पड़ा। है। रथीको उन्होंने सम्बोधित किया है 'पार्थ' नामसे— अर्जुन 'शोकसंविग्नमानसः'। शोकने उसके मनको अर्थात् उसकी माता पृथाका परिचय कराते हुए, जिससे सर्वथा घेर लिया। उसे क्या करना चाहिये, इसका पता कि हृदयकी कोमल स्वरतन्त्रियाँ झनझना उठें, और नहीं। किंकर्तव्यविमूढ्-अवस्था। सच्चे शब्दोंमें अर्जुन एक भयानक विपत्तिमें पड़ गया। संग्राम-क्षेत्रमें रथीके शत्रुपक्षका परिचय कराया है, पूर्वपुरुष कुरुका परिचय देते हुए, जिससे कि रथीके मनमें एकाएक ही कौटुम्बिक मनकी इस प्रकारकी अवस्थासे बढ़कर विपत्ति दूसरी भावधारणाका स्रोत फूट पड़े। सैन्यपर्यवेक्षणकी प्रतिक्रिया नहीं हो सकती। युद्धमें हाथ-पाँव टूट जानेसे कुछ नहीं क्या होगी, इस बातका संकेत भगवान् ह्रषीकेशकी दो-बिगड़ता। मन टूट जाना ही बड़ी विपद् है। प्राण चले चार बातोंसे ही अपने-आप लग जाता है। जायँ तो भी ठीक है-पर यदि लक्ष्य ही भ्रष्ट हो जाय अर्जुनने सेनाको देखा। उसने देखा कि सारे चेहरे तो महान् विपत्तिका सामना हो जाता है। अर्जुनका लक्ष्य परिचित थे। केवल परिचित ही नहीं थे, उनमें सब परम खो गया। इसीसे अर्जुनके सामने विपत्तिका हिमालय ढह आत्मीय कुटुम्बी ही थे-पितामह, पितृव्य, चाचा, नाना, पडा। गुरुदेव, मामा, भाई, पुत्र, पौत्र, श्वशुर, साले आदि सभी अर्जुनके रथके सारिथ स्वयं भगवान् हृषीकेश— सम्बन्धी युद्ध करनेके लिये उपस्थित हैं। अर्जुन देख रहे समस्त इन्द्रियोंके ईश्वर हैं। वे केवल अर्जुनके युद्धके ही हैं—पर अब और उनसे देखा ही नहीं जा रहा है। उनका सारिथ नहीं, अपित उसके सारे जीवनके सारिथ हैं। शरीर कॉॅंपने लगा, वे थरथराने लगे। उनका मुँह सूख अकेले अर्जुनके ही नहीं, मानवमात्रके जीवन-युद्धके वे गया, सारा शरीर रोमांचित हो उठा, तमाम बदनमें आग-सारिथ हैं। अर्जुनने उनको 'अच्युत' नामसे सम्बोधित सी जलने लगी--गाण्डीव हाथसे गिरता-सा दिखायी किया है। कारण, वे अपने रथ और रथी—किसीसे भी पडने लगा। मस्तिष्कके साथ-साथ मन भी व्याकुल जो कभी विच्युत नहीं होते। अपने रथ और रथीको संकटमें उडीं। P्रिसंबार - ऐहिह्न प्रीहित् एक्ट तीए एक्ट तीए एक्ट की प्रीहे प्रकार की विकास के कि प्रीहे के प्रीह के प्रीहे के प्रीहे के प्रीह मरणके साथी हैं। भक्त रथीके भगवान् सारिथ हैं। अर्जुनकी अवस्था देखकर श्रीकृष्ण बोलते हैं। रथी विपद्में पड़ा है, उसको विपत्तिसे मुक्त करनेके लिये सारिथ कहने लगते हैं। भक्त किंकर्तव्यविमृद् है, उसको

गीताका प्रथम अध्याय

संख्या १२]



कर्तव्य-पथपर आरूढ़ करानेके लिये ही भगवान् उपदेश देते हैं। भक्तको उदास देखकर भगवान्के हृदयमें व्यथाका स्रोत ही फूट पड़ा है। वे अब चुप नहीं रह सकते। निश्चेष्ट रहना उनका स्वभाव ही नहीं। वे व्यस्त होकर अपने भक्तकी ही मुक्तिके लिये सचेष्ट हो उठे हैं। भक्तको उसके कर्तव्यमार्गपर यथार्थरूपसे लगा ही देना होगा; यही उनकी अनन्य चेष्टा है। मानो इसके बिना अब वे स्थिर नहीं रह सकते। एक-दो वाक्य नहीं, उन्होंने पूरे सात सौ श्लोंकोकी एक विस्तृत वक्तृता ही दे डाली। दिया है, वे तिलमिला उठे हैं। यदि उनके मनमें व्यथा नहीं होती तो वे इतनी चेष्टा क्यों करते? मुसाफिरको

भक्तकी वेदनाने भगवानुके हृदयको आलोडित कर लोग दो-चार बातें कहकर ही टाल देते हैं-किनारा कसते हैं। पर जिनके हृदयमें हुक उठती है, जो पर-दु:ख देखकर कातर हो उठते हैं। वे तो सतुआ-नोन बाँधकर कार्यमें जुट पड़ते हैं। उनके सामने केवल काम रहता है-संसारका कोई भी दु:ख, कोई भी यातना, उन्हें विचलित नहीं कर पाती। भक्तकी वेदनाने भगवान्के हृदयकी तिन्त्रयोंको झनझना दिया है-वे व्याकुल हो उठे हैं। 'क्या भक्तकी व्यथासे व्यथित और उसे दुर

'भगवद्गीताके प्रथम अध्यायको इस रूपमें तो मैंने कभी समझा ही नहीं।' मैंने उत्तर दिया—'आपने समझा नहीं, सोचा नहीं, यह तो मैंने पहले ही जान लिया। पर हिन्दुओंके धर्मग्रन्थोंको जरा सोच-समझकर ही पढ़ना चाहिये। कारण, अनेकों भावनाओं और धारणाओंका सत्य उनमें गूढ़रूपसे भरा पड़ा है।' 'अच्छा, गीताके उपदेश और उपनिषदोंके उपदेश तो एक ही हैं।' अध्यापक महोदयने जिज्ञासाके स्वरमें पूछा। 'चीज एक ही है, पर रूप भिन्न-भिन्न हैं। जिस प्रकार भाप और एक गिलास जल।' 'मैं आपकी बात समझा नहीं, जरा समझा दीजिये।'

करनेमें लगे हुए हमारे ये भगवान् प्राणहीन हैं? प्रथम

अध्यायके इस दृश्यको देखकर भी क्या किसीमें ऐसा

चार-पाँच सौ छात्रोंके साथ अध्यापक महाशय

साहस है, जो भगवान्को प्राणहीन (Cold) कहे?'

विस्फारित नेत्रोंसे मेरी ओर देखने लगे और बोले-

सत्यकी धारा निहित है, पर गीता उसका मूर्तिमान् रूप है। उपनिषदोंकी शिक्षा नीरस है, पर गीताकी प्राणमयी-आनन्दमयी, कल्याणमयी अर्थात् सच्चिदानन्दमयी है। उपनिषदोंकी बातें मानो दीवारोंपर लिखे हुए नीतिवाक्य हैं, पर गीताके उपदेश विपद्ग्रस्त बन्धुके प्रति बन्धुकी वेदनाभरी वाणी हैं। अर्जुन को उन्होंने प्यार किया था। इसीलिये उसको इतना उपदेश दिया, इतनी सान्त्वना और इतनी सहानुभूतिपूर्ण बातें कहीं। भगवान् कहते हैं,—

'उपनिषदोंके उपदेश बिखरे पडे हैं। गीताके

उपदेश कार्यमें लगानेलायक सजाये हुए हैं। उपनिषद्में

'यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया॥' अर्जुन! मैं तुझे प्यार करता हूँ। इसलिये यह सब तेरे कल्याणके लिये कहता हूँ।' यही प्राणभरी स्नेहधारा-फल्गुधाराके समान सात सौ श्लोकोंमें प्रवाहित है। इसीलिये गीता इतनी सरस, मधुर और सर्वप्रिय है।

अध्यापक महोदयने बीचमें ही बाधा देते हुए

कहा—' और सब तो समझा, पर यह सर्वप्रिय क्या है— सो नहीं समझमें आया। हमारी समझमें आता है कि गीताकी अपेक्षा उपनिषद् अधिक सर्वप्रिय है। कारण, गीता विशेष घटना-चक्रके बीचमें रची गयी है. अत: चाहिये और चाहिये सामाजिक प्रतिष्ठा। शक्ति और राष्ट्रकी वह देश और कालकी सीमासे घिरी हुई नीतिकथामात्र स्वाधीनता चाहिये, शिल्पकला चाहिये, थोडा खेल-कृद है, दर्शन नहीं!' भी चाहिये। स्थूल रूपमें यही सब बातें जीवनके लिये 'उपनिषद् सर्वप्रिय नहीं है, यह बात तो मैं नहीं चाहिये। इन्हीं छ:-सात चीजोंको जीवनकी साधनीय कहूँगा। पर उपनिषद् अमूर्त (Abstract) है और गीता वस्तु (Ideal values of life) कहा जाता है। यही चीजें मूर्तिमान् (Concrete) है। उपनिषद् केवल दर्शन-ग्रन्थ यदि हम पा जाते हैं तो सुखी हो सकते हैं; किंतु कैसा है-धर्मग्रन्थ नहीं।' आश्चर्य है कि व्यक्तिगत और समष्टिगत चेष्टाओंसे आजतक 'गीता एक साथ ही दर्शन और धर्म (Metaphys-कोई भी इन सब वस्तुओंको एक साथ नहीं जुटा सका! 'स्वास्थ्य और अर्थशास्त्र (Hygiene and economics and theology) दोनों है। गीताकी सृष्टि भले ही देश ics)-की परीक्षामें उत्तीर्ण हो जाना जितना सहज है, उतना और कालकी सीमाके बीच ही हुई हो, पर गीताके तत्त्व सहज स्वास्थ्य-रक्षा और अर्थसमस्याका समाधान नहीं देश और कालसे ऊँचे उठे हुए हैं। उपनिषद् अलौकिक वस्तु है—पर गीता 'लौकिक-अलौकिक' दोनों है। है। धन कमाने जाकर स्वास्थ्य नष्ट हो गया—स्वास्थ्यके अर्जुनका दु:ख और उसकी युक्ति सभी समयोंमें समस्त अभावमें संसारके कर्तव्योंका पालन नहीं हो सका; धनके

दु:ख कैसे हुआ? यह बात समझमें नहीं आती।' अध्यापक महोदयने फिर जिज्ञासाभरी दृष्टिसे पूछा। 'समस्त प्राणियोंका जीवन दु:खमय है। दु:ख लगा ही हुआ है। इस बातको केवल भारतीय दार्शनिकोंने ही नहीं कहा है, शोपेनहर आदि अनेकों विचारशील तत्त्ववेत्ताओंने भी इसे स्वीकार किया है। ऊपरसे देखनेसे तो यही मालूम होता है कि यह सारा जीवन पुष्पवाटिका—सा ही है; पर भीतरसे अन्तरको पर्यवेक्षण करके देखनेसे ही मालूम होता है कि सारा जीवनमार्ग कण्टकाकीण है।

क्रिश्चियन धर्मग्रन्थोंने भी कहा है कि मनुष्य शापग्रस्त

प्राणी है। जीवनमें उसके साथ-साथ पापकी छाया लगी

ही रहती है। यह दूसरी भाषामें जीवनको दु:खमय

किसीने भी इसके कारणका विश्लेषण नहीं किया। गीताके

ग्रन्थकारने यह किया है, एवं गीताके प्रथम अध्यायमें

काव्यकी भाषामें उसका रूप वर्तमान है। वह रूप क्या है,

वही बतलाता हूँ। हमारी दैनिक जीवनयात्रा कितनी ही

वस्तुओंको भित्तिपर यन्त्रवत् चलती रहती है। स्वास्थ्य

चाहिये, धन चाहिये, विद्या चाहिये, पारिवारिक संवृद्धि

इस दु:खका कारण क्या है ? मनके गम्भीरतम स्तरसे

बतलाना ही है।'

'अर्जुनका दु:ख—सब समय सब प्राणियोंका

प्राणियोंका दु:ख और उनका निस्तार है।'

स्नेहकी माँग। वह माँग भी कम चुम्बक नहीं है। उसके चित्तको इन्हीं दो माँगोंको परस्परिवरोधिता (Conflict of values) – ने व्याकुल कर डाला है। वह तिलिमिला उठा है इस विरोधसे। इस विरोधने अर्जुनके हृदयको एकबारगी ही चूर्ण कर डाला है। हमारे सब प्राणियोंके समस्त दु:खोंका यही मूलतत्त्व (Formula) है। जो कुरुक्षेत्र या कर्मक्षेत्रमें जितनी दूरतक अग्रसर हुआ है, उसके दु:खकी तीव्रता उसी अनुपातसे कम या अधिक है।

मनुष्यके अनादिकालसे चले आते हुए दु:खका रूप

अभावमें विद्याका अर्जन नहीं हो सका, विद्याके अभावमें

धन ही नहीं कमा सके। अर्थात् वे वांछित वस्तुएँ परस्परमें

ही विरोधिनी हैं। एकको पानेपर दूसरी छूट जाती है। ये

परस्परिवरोधिनी हैं। इसी विरोधके अन्दरसे दु:खका आविर्भाव

पूर्ण करनेकी अभिलाषासे ही कृतसंकल्प होकर युद्ध क्षेत्रमें उतरा। तब उसके हृदयमें आयी पारिवारिक

अर्जुन अपने समाज और राष्ट्रकी समस्त माँगोंको

होता है। अर्जुनका दु:ख भी वही है।'

भाग ९२

'चमत्कार'—सब एक साथ ही बोल उठे। इस रूपमें गीताके प्रथम अध्यायको कभी सोचा-समझा नहीं। 'सोचिये, समझिये, और भी, क्या-क्या न पायेंगे। धन्यवाद।'

'अर्जुनविषादयोगे' में निहित है।

भगवान् श्रीशिव और भगवान् श्रीराम संख्या १२] भगवान् श्रीशिव और भगवान् श्रीराम (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) लगा लिया। भक्त और भगवान्के इस अपूर्व प्रेम-भगवान् शिव और भगवान् श्रीराम तत्त्वतः अभिन्न हैं-इस भावकी एक बड़ी ही सुन्दर कथा पद्मपुराणके मिलनको देखकर सारी सेना मुग्ध हो गयी और लगी पातालखण्डमें प्राप्त होती है। परात्पर, परब्रह्म लीलामय जय-जयकार करने। शंकरजी कुछ स्वस्थ होनेपर बोले— भगवान् श्रीरामने लंका-विजयके अनन्तर अयोध्या लौटकर 'प्रभो! आप प्रकृतिसे पर, साक्षात् परमेश्वर हैं, आप ही राज्याभिषेक हो जानेपर मुनि अगस्त्यके आदेशसे अपनी अंश-कलासे अखिल विश्वका सृजन, पालन और मानवलीलाकी मर्यादा-रक्षाके लिये रावणादिवधजनित संहार करते हैं और स्वयं अरूप होते हुए भी मायासंवलित ब्रह्महत्यादोषकी निवृत्तिके उद्देश्यसे अश्वमेधयज्ञका समारम्भ होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—इन तीन रूपोंको धारण किया। यज्ञका घोड़ा देश-देशान्तरोंमें घूमता हुआ देवपुर करते हैं। आपके लिये ब्रह्महत्यादोषके परिमार्जनके लिये नामक नगरमें पहुँचा। वहाँके राजा वीरमणिने घोडेको अश्वमेधयज्ञका उपक्रम करना विडम्बना है। जिनके पकड़ लिया और दोनों सेनाओंमें युद्ध छिड़ गया। चरणोंसे निकल हुई श्रीगंगाजी लोकमें पतितपावनी नामसे राजा वीरमणि शिवके अनन्य भक्त थे और परम प्रसिद्ध हैं, और मेरे सिरका आभूषण हो रही हैं, जिनके दयाल शंकर अपने भक्तकी रक्षाके लिये सदा उनके नामके उच्चारणमात्रसे अजामिल-जैसे अनेकों महापातकी नगरमें निवास करते थे। जब उन्होंने देखा कि वीरमणिकी तर गये, उन्हें कभी ब्रह्महत्याका पाप लग सकता है? सेना राघवी सेनाके सेनापित शत्रुघ्नके द्वारा पराजित हो आपकी सारी क्रियाएँ संसारमें मर्यादा-स्थापनके लिये ही रही है और सैनिकोंका क्रमश: ह्रास हो रहा है, तब हैं, इसीलिये तो आपको 'मर्यादापुरुषोत्तम' कहते हैं, उन्होंने स्वयं रणांगणमें उपस्थित होकर शत्रुघ्नकी सेनाके नाथ! आपके कार्यमें विघ्न डालकर मैंने वास्तवमें महान् अपराध किया है, उसके लिये क्षमा चाहता हूँ। बात यह साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। जब संहारमूर्ति भगवान् रुद्र है, कि मुझे सत्यके पाशमें बँधकर इच्छा न रहते हुए क्रुद्ध होकर समरमें आ डटें, तब भला किसकी मजाल जो उनके अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहारको सह सके। बात-की-भी यह सब कुछ करना पड़ा। इसीलिये आपके प्रभावको जानते हुए भी आपकी सेनाके विरुद्ध खड़े होनेका बातमें राघवी सेना छिन्न-भिन्न हो गयी और सैनिकोंमे अनुचित कार्य मैंने किया। इस राजाने प्राचीन कालमें हाहाकार मच गया। जब शत्रुघ्नने देखा कि भगवान् शंकरके बाणोंसे किसी प्रकार भी रक्षा नहीं है, तब उज्जयिनीमें महाकालके स्थानपर बड़ी उग्र तपस्या की उन्होंने कातर होकर श्रीकोसलाधीशका स्मरण किया थी, जिससे प्रसन्न होकर मैंने इसे एक वरदान दिया था। और भगवान् उसी क्षण भक्तकी पुकार सुनकर यज्ञदीक्षाके वह यह था कि जबतक अश्वमेधके प्रसंगमें मेरे इष्टदेव यहाँ न पधारें, तबतक मैं तुम्हारे नगरकी रक्षा करूँगा। वेशमें ही युद्ध-भूमिमें उपस्थित हो गये। भगवान्के भक्तभयहारी, सस्मित वदनारविन्दका दर्शनकर राघवी बस, आज मेरा व्रत समाप्त हुआ। मैं वास्तवमें अपनी सेनामें प्राण आ गये और सैनिकोंने जयघोषपूर्वक कृतिपर लिज्जित हूँ। अब आप कृपया मेरे इस भक्तको भगवानुका अभिनन्दन किया। अपना दासानुदास समझकर अपनाइये और घोड़ेसहित इसके राज्य एवं सर्वस्वको अपनी सेवामें अंगीकार शंकरजीने अपने इष्टदेवको जब सामने आते देखा, तब तुरंत युद्ध बन्द करके सम्मुख आये और प्रेमविह्नल कीजिये।' यह कहकर भगवान् त्रिलोचनने राजा वीरमणिको होकर चरणोंमें गिर पड़े। भगवान्ने उन्हें उठाकर छातीसे पुत्र-पौत्रोंके सहित भगवानुके सम्मुख ला उपस्थित

किया और उनके भवभयहारी चरणोंमें डाल दिया। दोनोंमें जो भेद समझता है, वह मूर्ख है और जडबुद्धि है। वह हजार कल्पपर्यन्त कुम्भीपाक नरकमें घोर देवता लोग जो विमानोंमें बैठे हुए यह अपूर्व दृश्य देख रहे थे, धन्य-धन्य, कहकर राजा वीरमणिके भाग्यकी यातनाओंको सहता है। जो अपके भक्त हैं, उन्हें सदासे सराहना करने और पुष्प बरसाने लगे। ही मैं अपना भक्त समझता हूँ। और जो मेरे भक्त हैं, वे अवश्य ही आपके भी दास हैं।'* भगवान् हँसकर बोले—'प्राणाधिक शंकर! भक्तकी रक्षा करके आपने भक्तकी मर्यादाकी ही रक्षा की है, इस प्रकार दोनों सेनाओंके विरोधको शान्तकर और इसमें अनुचित कौन-सी बात हुई, जिसके लिये आप इस शंकरके साथ अपना अभेद बताकर भगवान् अन्तर्धान हो प्रकार दीनभावसे क्षमा-याचना करते हैं ? फिर आपसे तो गये और श्रीशंकरजी भी अपने भक्तका कल्याणकर अपराधकी शंका ही नहीं हो सकती, आप तो सदा मेरे कैलासको चले गये।

जो मैं हूँ, सो आप हैं और जो आप हैं, सो मैं हूँ। हम इनमें स्वरूपत: भेद-कल्पना भी नहीं करनी चाहिये। सूर्यस्नानका आनन्द

हृदय-मन्दिरमें निवास करते हैं, और मैं आपके हृदयमें

रहता हूँ। वास्तवमें हम दोनोंमें कोई अन्तर ही नहीं है।

यह हरियाली, यह सौन्दर्य, यह शोभा पाते कहाँसे हैं?

जहाँ आध घण्टे भी धूप न आती।

(श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

लहलहाते पौधे कहाँसे पाते हैं अपनी जीवनी-शक्ति? घटना पुरानी है। नवविवाहित दम्पती। किरायेका

कमरा और छोटी-सी जगह। खिडकी भी ऐसी थी कि

पति कहता ही रह गया और पत्नीके चलते

तुलसीका बिरवा कुम्हलाकर ही रह गया! पति कहता

था कि गमला धूपमें रखा जाय, पत्नीकी जिद्द थी कि

गमला खिड्कीपर रखा जाय ताकि तुलसीके बिरवासे

छन-छनकर पवित्र हवा आये। लेकिन हवा तो तब आती,

जब बिरवा पनपता; किंतु बिना धूपके वह पनपता कैसे?

आखिर तुलसीका वह बिरवा नहीं पनप सका।

सवाल है कि पेड़-पौधोंमें यह हरीतिमा-क्लोरोफिल

आती कहाँसे है ? यह हरी-हरी घास, ये हरे-भरे पौधे,

ये हरे-हरे वृक्ष, ये सुन्दर-सुन्दर चहचहे, रंग-बिरंगे फूल,

और उसका अभाव?

है ? सबका उत्तर है—

यह है सूर्यभगवान्की कृपा।

हँसने-खिलखिलानेमें उसी जादुगरका जादु भरा है।

हैं, विकसित, पल्लवित और पुष्पित होते हैं।

मालीकी रश्मियोंमें। खुले मैदानमें खेलने-किलकनेवाले पश्-पक्षियोंको देखिये; चाहे स्त्री-पुरुषों, बालकों-

अनन्त जीवनदायी शक्ति भरी है भगवान् अंशु-

अत: यह निश्चित जानना चाहिये कि एक ही

परम तत्त्वके ये सब लीलाभेदसे विभिन्न नामरूप हैं।

वनस्पतिमें, प्राणि-जगत्में यह सुषमा, यह प्राणशक्ति कहाँसे आती है? यह खुशनुमा बगीचा खिलता कैसे

भगवान् भास्कर ही प्रकृतिके कण-कणमें सुषमा

और सौन्दर्य बिखेरते हैं। वनस्पतिका सौन्दर्य उन्हींकी

देन है। प्राणि-जगत्में जो आनन्द बिखरा है, उसका उद्गम वहींसे है। सूर्य-किरणोंके प्रकाशमें ही सब जीते

बालिकाओंको देखिये; उनके कूदने-फाँदनेमें, उनके

भाग ९२

* ममास्ति हृदये शर्वो भवतो हृदये त्वहम्। आवयोरन्तरं नास्ति मूढा: पश्यन्ति दुर्धिय:॥

वृक्ष और लताएँ, फल और फूल, खेतोंमें खड़े

ये भेदं विद्धत्यद्भा आवयोरेकरूपयोः । कुम्भीपाकेषु पच्चन्ते नराः कल्पसहस्रकम् ॥ Hinduism Discord Server https://dsc.gg/gharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha य त्वद्भक्ताः सदासस्त मद्भका धर्मसंयुताः । मद्भका आप भूयस्या भक्त्या तव नितकराः ॥ (पद्म० पा० २८ । २०-२२)

संख्या १२] सूर्यस्नानव	का आनन्द
*******************	***************************************
देख लीजिये—अँधेरी कोठरियोंमें रहनेवाले प्राणियोंके	(१८९०), फीनसेन (१८९३), ब्रेबीट आदिने सूर्य-किरणोंसे
जीवनमें, पृथ्वीकी तहमें घुसकर कोयला खोदनेवाले	रोगनाशके अनेक प्रयोग किये। १९३० से स्विट्जरलैण्डमें
मजदूरोंके चेहरोंपर। उनकी उदासी, कमजोरी, निराशा	सोलेरियम सूर्यगृह खोलकर डॉक्टर रोलियरने क्षयरोगियोंको
पुकार-पुकारकर कहती है कि हमें धूपका आनन्द नहीं	अच्छा करके विश्वको चमत्कृत कर दिया।
मिलता। हम भाग्यशाली नहीं हैं।	हुआ यह कि रोलियर, यूरोपके प्रसिद्ध डॉक्टर
क्षयरोगके बीमारोंमें सबसे बड़ी संख्या उन्हींकी	कोचरके मातहत क्षयरोगियोंकी चिकित्सा करते थे।
रहती है। धूपसे वंचित रहनेवाले बच्चे कितने दुबले,	पद्धति थी रोगीकी हिड्डियोंको रगड़–रगड़कर ऑपरेशनद्वारा
पतले, मरघिल्ले और सूखारोगसे पीड़ित रहते हैं—कौन	उसे रोगमुक्त करनेकी। पर कुछ दिन तो रोगी ठीक हो
नहीं जानता!	जाता और बादमें फिर रोग पनप उठता था। दो–तीन,
तभी तो अंग्रेजी कहावत चल पड़ी है—'Where	चार-पाँच ऑपरेशनोंसे लेकर बीस-बीसतक ऑपरेशन
the sun does not enter doctor must' जहाँ सूर्यको	होते, पर फिर भी उसे मौतके घाट उतरना पड़ता।
प्रवेश नहीं मिलेगा, वहाँ डॉक्टरको ही प्रवेश मिलेगा।	रोगियोंकी भयंकर पीड़ा और वेदना देखकर रोलियर
और गरीब भारतके स्त्री-पुरुष तो बेचारे रोटी ही	व्यथित हो पड़े, सोचने लगे। सोचते-सोचते उनकी
नहीं जुटा पाते सुबह-शाम, उनके लिये डॉक्टरका सवाल	समझमें आया कि इस रोगके कारणोंमें मूल कारण है—
ही कहाँ आता है? वे तो सहज ही मौतके घाट उतर	सूर्यप्रकाशका अभाव। मनुष्य अपने शरीरपर दुनियाभरके
जाते हैं। तो फिर सूर्य-प्रकाशका सेवन क्यों न करें?	कपड़े लादकर सूर्यप्रकाशसे वंचित होता है और उसीसे
सूर्य-किरणोंके बारेमें विज्ञान क्या कहता है—हर	यह रोग पनपता है। उसे धूप क्यों न मिले, खुली धूप
चीजको तर्क और प्रयोगकी कसौटीपर कसनेवाला	मिले तो वह स्थायी रूपसे रोगमुक्त हो सकता है।
विज्ञान क्या कहता है ? उसे थोड़ा समझें।	अपने चिन्तनको व्यवहारमें परिणत करनेके लिये
वह कहता है कि हम यह तो नहीं बता सकते कि	रोलियरने स्विट्जरलैण्डमें समुद्रतलसे ६,००० फीटकी
ऐसा क्यों होता है, पर हमारे प्रयोग इस बातके सबूत	ऊँचाईपर बसे लेसिन नामक गाँवमें अपना 'सोलेरियम'-
हैं कि सूर्य-किरणोंमें रोगोंको नष्ट करनेकी अद्भुत क्षमता	सूर्यगृह खोला।
है। भयंकर–से–भयंकर रोग भी सूर्य–िकरणोंकी सहायतासे	खुली धूप, खुली हवाने अपना जादू बिखेरना शुरू
अच्छे हो जाते हैं, फिर जान लेनेवाला यह क्षय—टी॰	कर दिया। क्षयरोगी पूर्णरूपसे स्वस्थ होने लगे। अन्य रोगोंके
बी०-जैसा रोग ही भले क्यों न हो! सूर्य-किरणोंमें	रोगियोंपर भी सूर्यके प्रकाशका अद्भुत प्रभाव पड़ने लगा।
रोगनाशक विशिष्ट क्षमता है।	सूर्य-प्रकाश लीगका अध्यक्ष डॉक्टर सी० डब्ल्यू०
सूर्यको यूनानी भाषामें 'हेलियो' कहते हैं—	सेलीबी सन् लाइट एण्ड हेल्थ (सूर्य-प्रकाश और
प्रसन्नतादाता, आनन्ददाता। उनकी किरणोंसे चलनेवाली	स्वास्थ्य) नामक पुस्तकमें लिखता है कि सन् १९२१
चिकित्सा—हेलियो थेरापी आज विश्वभरमें छा गयी है।	में जब मैं डॉक्टर रोलियरके इस चिकित्सालयमें गया था
उससे न जाने कितने रोगी स्वस्थ हो रहे हैं।	तो कुछ भारतीय डॉक्टरलोग रोलियरसे पूछ रहे थे कि
ईसाकी शताब्दीके आरम्भमें यूनानके हिप्पोक्रेटसने और	इधर तो धूपकी कमी रहती है, पर भारतमें तो धूप-ही-
उसके बाद हीरोडोटसने उसपर जोर दिया था, पर उनकी	धूप है, वहाँ हम धूपका सदुपयोग कैसे करें?'
बातोंपर वैज्ञानिकोंने ध्यान नहीं दिया। इधर उन्नीसवीं	जामनगरके राजा साहब जब यूरोपसे सोलेरियम
शताब्दीके मध्यसे लोगोंका ध्यान इस ओर गया है।	देखकर आये तो उन्होंने भारत आकर प्रचुर धन लगाकर
बोनेट (१८४५), आर्नल्ड रिकली (१८४८), पाम	सूर्यगृह खोला। आज देश-विदेशमें अनेक सूर्यगृह खुले

भाग ९२ है। असभ्यताका लक्षण माना जाता है। जबकि वेदमें हैं, जो पाचन-तन्त्र, चमड़ी, मज्जातन्तुके रोगोंसे लेकर क्षय-जैसे भयंकर रोगोंकी सफल चिकित्सा करनेमें प्रार्थना की गयी है—'मा नः सूर्यस्य सदृशो युयोथाः' (कपिष्ठल संहि॰ २९।७) 'हे ईश्वर! हमें सूर्य-सफल हो रहे हैं। गन्धबाबा परमहंस स्वामी श्रीविशुद्धानन्दजी महाराजने दर्शनसे दूर न रख'। वेद और विज्ञान दोनों कहते हैं कि स्फटिक यन्त्रोंद्वारा सूर्यरिशमयोंको आकृष्टकर जो चमत्कार खुले शरीरसे रहो, कपड़ेकी जिल्दमें कल्याण नहीं।' दिखाये थे, उनसे बडे-बडे वैज्ञानिक चिकत रह गये थे, शरीरपर पड़कर धूप तुम्हें चमका देगी। पर यह सूर्य-विज्ञान तो भारतकी पुरातन विद्या है। वेदोंमें तो हम यदि अपना कल्याण चाहते हैं, रोगमुक्त सूर्यकी किरणोंका—'ऐतश' और 'नीलग्रीव' कहकर होकर स्वस्थ और प्रसन्न जीवन व्यतीत करना चाहते वर्णन मिलता है, इनसे रक्तक्षय, रिकेट, स्कर्वी, हैं तो उसका एक ही उपाय है; और वह है—सूर्य-स्नान। सूर्यस्नानका आनन्द लीजिये। आपके स्वास्थ्य आष्टियोमेलेशिया, क्षयरोग आदिके अच्छे होनेकी बात और आनन्दका बीमा तैयार है। कही गयी है। सूर्यिकरणोंमें जो सतरंगीपन है—नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारंगी, बैगनी और लाल रंग— पर सूर्यस्नानका उपाय—कैसे करें सूर्यस्नान? उन रंगोंको खींचकर, उनके शीशोंसे, उनके पानीसे, उपाय बहुत सीधा-साधा है। बात सिर्फ करनेकी उनके तेलसे चिकित्साकी परिपाटी आज बहुश: प्रचलित है— है। एक्सरे तो हमारे दैनिक जीवनकी आवश्यकताका (१) मकानका या छतका कोई खुला एकान्त अंग ही बन बैठा है। स्थान खोज लीजिये, जहाँ सूर्य-किरणें मिलती हों। तो मूल बात यह है कि सूर्य-किरणोंमें रोगनिवारक (२) शरीरपरके तमाम कपड़े उतारकर गमछा और स्वास्थ्यवर्धक अनुपम शक्ति भरी पड़ी है। विटामिन पहन लें। 'डी' के अभावमें महिलाएँ मुरझा जाती हैं और बच्चे (३) प्रात:काल सूर्योदयके समयसे सूर्यस्नान आरम्भ सुखारोगके शिकार बन जाते हैं। पर सूर्य तो ठहरा करें। सायंकाल सूर्यास्तके समय भी सूर्यस्नान कर सकते विटामिनोंका भण्डार। लगाइये शरीरपर सरसोंका तेल हैं। प्रखर धूपमें सूर्यस्नान न करें। और थोड़ी देर सूर्यस्नान कर लीजिये—विटामिन 'डी' (४) सिरको भीगे रूमाल या तौलियासे ढक लें। ही 'डी' मिल जायगा आपको। केलेके पत्ते मिल जायँ तो और भी अच्छा हो। विनोबा कहते हैं और ठीक ही कहते हैं कि 'हमारे (५) खुले बदनपर धूप लगने दें। सामने इतना बड़ा सूर्य खड़ा है। उसे अपना ख़ुला शरीर (६) प्रथम १५ मिनटसे सूर्यस्नानका आरम्भ करें, दिखलानेकी हमें बुद्धि नहीं होती। सूर्यके सामने अपना धीरे-धीरे अवधि बढ़ाकर दो घण्टेतक ले जा सकते हैं। (७) सूर्यस्नानके समयको चार भागोंमें बाँटकर शरीर खुला करो, तुम्हारे सारे रोग भाग जायँगे। लेकिन हम अपनी आदत और शिक्षासे लाचार हैं। डॉक्टर जब सीधे, चित्त, दाहिने और बायें करवटसे धूप लें। (८) सूर्यस्नानके बाद ठण्डे जलसे तौलिया भिगोकर कहेगा कि तुझे तपेदिक हो गया, तब वही करेंगे।""उण्डी आबो-हवावाले देशोंके डॉक्टर कहते हैं कि बच्चोंकी शरीरको रगड़-रगड़कर स्वच्छ कर लें। हड्डियाँ बढ़ानेके लिये उन्हें 'काडलिवर आयल' दो। (९) भोजनसे एक घण्टा पहले, भोजनके दो घण्टे जहाँ सूर्य नहीं है, ऐसे देशोंमें दूसरा चारा ही नहीं बादतक सूर्यस्नान न करें। है। हमारे यहाँ सूर्य-दर्शनकी कमी नहीं। यहाँ सूर्यस्नानसे दिन-दिन आपका स्वास्थ्य सुधरने 'महाकाडलिवर आयल' भरपूर है, लेकिन हम उसका लगेगा। तन, मन प्रसन्न होगा। लूटिये यह आनन्द! उपयोग नहीं करते। हमें लँगोटीपर शर्म आती नि:शुल्क! निर्बाध!! एकदम मुफ्त!!!

संख्या १२] नित्य-प्राप्त परमात्म-तत्त्व साधकोंके प्रति— नित्य-प्राप्त परमात्म-तत्त्व (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) जो नित्य-प्राप्त परमात्म-तत्त्व है, उसीको प्राप्त इससे सहज ही नित्य-प्राप्त परमात्म-तत्त्वका अनुभव करना है। उस तत्त्वको प्राप्त करनेके लिये किसी परिश्रम हो जायगा। अथवा समयकी आवश्यकता नहीं है। सभी विषम, जबतक आदर-सत्कार, मान-बड़ाई एवं अनुकूलताकी परिवर्तनशील एवं प्रतिक्षण नष्ट होते हुए भूतप्राणियोंमें प्राप्तिसे सुख तथा निन्दा, अपमान, प्रतिकूलता आदिकी वे परमात्मा सम, अपरिवर्तनशील एवं अविनाशीरूपसे प्राप्तिसे दु:ख होता है, तबतक परमात्माका अनुभव नहीं स्थित हैं (गीता १३। २७)। उनकी प्राप्तिका अनुभव हो सकता। इसमें एक विलक्षण बात यह है कि यदि साधक अपने स्वरूपमें स्थित न रह सके और उसपर करनेके लिये कोई भी व्यक्ति अयोग्य, निर्बल अथवा सुख-दु:खका प्रभाव पड़ जाय, तो भी उसे चिन्ता नहीं पराधीन नहीं है। केवल परिवर्तनशील एवं नाशवान् संसारकी ओरसे दृष्टि हटाकर इस तत्त्वकी ओर दृष्टि करनी चाहिये; अपितु इन सुख-दु:ख, मान-अपमान करनेकी ही आवश्यकता है। आदिको एवं इनसे पडनेवाले प्रभावको महत्त्व नहीं देना संसारके सम्बन्धसे मनुष्यके मनमें हलचल उत्पन्न चाहिये; क्योंकि ये आने-जानेवाले, अनित्य हैं— हो जाती है। बाहरकी अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितिके **'आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत'** (गीता अनुसार उसके अन्त:करणमें सुख-दु:ख, शान्ति-अशान्ति २।१४)। इन्हें महत्त्व देते रहेंगे तो इनका प्रभाव मिटेगा आदिका संचार होता रहता है। वह बाहरकी बदलती नहीं। जो निरन्तर रहनेवाली अपनी सत्ता है, उसीको हुई परिस्थितियोंको तथा अन्त:करणमें होनेवाली महत्त्व देना चाहिये कि 'मैं तो निरन्तर रहता हूँ। आदर हलचलको जाननेवाला है। सुख तथा दु:ख-इन दोनोंको हुआ तो भी मैं वही रहा; निरादर हुआ तो भी मैं वही जाननेवाला वह एक ही है। ऐसा नहीं होता कि रहा; निन्दा हुई तो भी मैं वही रहा; प्रशंसा हुई तो भी सुखको जाननेवाला कोई और है तथा दु:खको जाननेवाला में वही रहा; अनुकूल-से-अनुकूल परिस्थित आयी तो कोई और। सुख तथा दु:ख बदलनेवाले एवं विषम भी मैं वही रहा; एवं प्रतिकूल-से-प्रतिकूल परिस्थित हैं; किंतु इनको जाननेवाला स्वयं दोनों ही परिस्थितियोंमें आयी तो भी मैं वही रहा।' इस प्रकार स्वयंकी वही रहता है, बदलता नहीं। अत: यह सिद्ध हुआ वास्तविकताको जान लेनेसे सुख-दु:ख, मान-अपमान कि परिवर्तन बाहरकी परिस्थितियोंमें एवं हृदयकी आदिसे पड़नेवाला प्रभाव स्वत: ही मिट जायगा। यह हलचलमें ही होता है, स्वयंमें कोई परिवर्तन नहीं अनुभवकी बात है कि यह प्रभाव सदा ठहरता नहीं।

होता। स्वयंमें कोई परिवर्तन होता तो वह इन बदलती हुई परिस्थितियोंको जान नहीं सकता। कारण कि परिवर्तनशील अपरिवर्तनशीलके द्वारा ही जाना जा सकता है। दोनों ही परिवर्तनशील हों तो एक-दूसरेको

जान नहीं सकते। इसलिये साधकको इन परिवर्तनशील

सुख-दु:ख, अनुकूलता-प्रतिकूलता आदिपर दृष्टि न रखकर इन्हें महत्त्व न देकर अपरिवर्तनशील एवं

सम-परमात्मापर ही अपनी दृष्टि रखनी चाहिये।

असत्को महत्त्व देनेसे सत्की प्राप्ति कैसे होगी? सत्की प्राप्ति तो असत्के त्यागसे ही होगी। जिस समय साधक इन द्वन्द्वोंसे प्रभावित न होनेकी योग्यता प्राप्त कर लेगा, उसी समय मोक्ष-प्राप्तिके योग्य हो जायगा— 'समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते।'

(गीता २।१५)

अत: जो ठहरता नहीं, उसको क्या महत्त्व दिया जाय!

अर्जुनका रथ

(श्रीराजेन्द्र बिहारीलालजी)

सेना कौरवोंके पक्षमें गयी।

कौरव और पाण्डव चचेरे भाई थे। कौरव दुष्ट प्रकृतिके थे और पाण्डवोंका नाश करनेके लिये तरह-

जब दोनों ओरकी सेनाएँ समरभूमिमें आमने-सामने तरहके उपाय करते रहे। जब वे उपाय सफल नहीं हुए खडी थीं, अर्जुनने अपने रथको दोनों सेनाओंके बीचमें

खड़ा करवाया। जब उसने यह देखा कि जिन लोगोंसे

उसे युद्ध करना है, उनमेंसे अनेक सगे-सम्बन्धी तथा

गुरुजन हैं तो उसने अपने धनुष और तरकसको एक ओर

रख दिया और श्रीकृष्णसे कहा कि मैं युद्ध नहीं करूँगा। अर्जुनके तर्कका सार यह था कि राज-पाटके लिये अपने प्रियजनोंका संहार करनेसे कहीं उत्तम होगा भिक्षा

माँगकर जीवन-यापन कर लेना।

रथ, जिसके सारथि स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण थे, गीताके मूल सिद्धान्तोंका दृष्टान्त है। गीतामें जो बातें शब्दोंमें बतायी गयी हैं, वे अर्जुनके रथमें प्रत्यक्ष दिखायी गयी

हैं। इस रथमें मनुष्य और भगवान्, नर और नारायणका योग और मिलन होता है।

सारा संसार कुरुक्षेत्र है

वास्तवमें देखा जाय तो युद्ध-स्थलके बीच अर्जुनका

जिस स्थानपर अर्जुनका रथ खड़ा है, वह कुरुक्षेत्र है। कुरुक्षेत्र सारे संसार, विशेषकर मानव-जीवनका

प्रतीक है। कुरुक्षेत्रके तीन पहलू हैं, जो सभी बड़े

महत्त्वके हैं। ऐतिहासिक दृष्टिसे यह प्रसिद्ध रणभूमि है। कुरुक्षेत्रका शाब्दिक अर्थ है-कर्मक्षेत्र या कर्तव्य-क्षेत्र।

गीतामें इसे धर्मक्षेत्र भी कहा गया है और धर्मक्षेत्र शब्दसे

ही गीताका आरम्भ होता है—'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे।' कुरुक्षेत्रकी भाँति यह जीवन भी एक युद्धभूमि है।

प्रत्येक मनुष्यको अपनी और समाजकी कमजोरियों और बुराइयोंसे, अन्याय और अधर्मसे तथा प्रकृतिकी विनाशकारी

शक्तियाँ जाग्रत् होती हैं। गीता सिखानेवालेने यह नहीं

शक्तियोंसे मोर्चा लेना पड़ता है। यह संघर्ष कष्टदायक युद्ध अवश्यम्भावी हो गया। दोनों पक्षोंने लड़ाईकी होते हुए भी लाभप्रद है; क्योंकि इससे मनुष्यकी सुषुप्त

भी की; यहाँतक कि उनकी ओरसे स्वयं श्रीकृष्ण दूत बनकर गये और कौरवोंको बहुत समझाया-बुझाया, पर

तो उन्होंने पाण्डवोंको द्यूतके खेलमें धोखा देकर परास्त

किया। फलस्वरूप पाण्डव अपना राज्य खो बैठे और उन्हें तेरह वर्ष निर्वासनमें व्यतीत करने पड़े। यह कथा

वापस मिलना था और इसके लिये उन्होंने पूरी कोशिश

निर्वासन-अवधि पूरी हो जानेपर उन्हें अपना राज्य

विस्तारसे महाभारतमें है।

कौरवोंमें ज्येष्ठ दुर्योधन युद्धके बिना पाण्डवोंको सूईकी नोकके बराबर भी भूमि लौटानेको सहमत न हुआ। समझौतेका हर सम्भव प्रयास विफल हो जानेपर

तैयारी की। अर्जुनकी प्रार्थनापर श्रीकृष्ण युद्धमें उनके सारथी बननेको राजी हो गये, पर इस शर्तके साथ कि

वे मिलि पुंडुक्ति हो इन्हर्म हो भूकि स्वेन ए उन्ने क्षि विकार के स्विव के भूकि विकार के स्विव के विकार के स्व

संख्या १२] अर्जुन	का रथ १९
<u> </u>	<u> </u>
है कि संघर्षका डटकर सामना करो—'इसलिये अर्जुन!	परिभाषामें आते हैं। गीतामें श्रीकृष्णभगवान्ने आश्वासन
तू उठ, शत्रुओंको जीतकर यश प्राप्तकर और समृद्ध	दिया है कि वे स्वयं ऐसे सभी कार्योंमें बल्कि उनके
राज्यको भोग। मेरे द्वारा यह सब पहलेसे ही मारे हुए	प्रत्येक अंशमें, विद्यमान हैं; वे ही ऐसे सब कामोंके
हैं, तू निमित्तमात्र हो जा।' (११।३३)	भोक्ता हैं। सच पूछिये तो वे ही उन सबका लाभ
संसार कर्मक्षेत्र या कर्तव्य-क्षेत्र भी है। प्रत्येक	उठानेवाले हैं (५।२९, ९।१६—१८)। पर श्रीकृष्ण
मनुष्यको भगवान्ने कुछ बुद्धि और शक्ति दी है और	मनुष्यके किये हुए अच्छे कामोंके मूक द्रष्टा और भोक्ता
कुछ काम सौंपे हैं। जीवनको चलाने तथा समाज और	ही नहीं, अपितु वे उनमें सिक्रयरूपसे भाग भी लेते हैं,
राष्ट्रकी सुव्यवस्थाको बनाये रखनेके लिये और मनुष्यकी	उन्हें पूरा करते हैं और उनका फल देते हैं।
उन्नतिके लिये सबको अपने-अपने कर्तव्यका पालन करना	गीताद्वारा प्रमाणित नित्ययोग या सततयोगको सिद्ध
चाहिये और अनवरत परिश्रम करना चाहिये। पुरुषार्थ ही	करनेके लिये यह आवश्यक है कि मनुष्य हर समय
जीवन है। पुरुषार्थ करके पुरुषको महापुरुष—विभूति	ईश्वरसे सम्पर्क बनाये रखे। यह तभी हो सकता है जब
और परमात्माका प्यारा बनना चाहिये। अनीति और	वह अपने सभी काम भगवान्की आराधना या सेवा
अनाचारका दमन करना प्रत्येक उदात्त पुरुषका कर्तव्य है।	समझकर भगवान्की प्रसन्नताके लिये करे, न कि अपने
कुरुक्षेत्रको धर्मक्षेत्र बतानेका आशय यह है कि	निजी लाभ या स्वार्थके लिये। भगवान् कहते हैं—'हे
जीवनरूपी खेतमें नेकी, आराधना, सेवा आदिके अच्छे	अर्जुन! तू जो कुछ कर्म करता है, जो कुछ खाता है,
बीज बोकर मनुष्य सुख, सफलता और पूर्णताकी बढ़िया	जो कुछ यज्ञ करता है, जो कुछ दान देता है, जो कुछ
फसल तैयार कर सकता है। इसके विपरीत अगर वह	तप करता है वह सब मेरे अर्पण कर।' (९।२७)
अपने खेतको जैसा है, वैसा ही छोड़ देता है, अगर	कुरुक्षेत्रमें श्रीकृष्ण और अर्जुनको लिये हुए रथ
उसमें पुण्य और सत्कार्यके बीज नहीं बोता है तो	समस्त मानव-जातिसे पुकार-पुकारकर कह रहा है कि
आलस्य, मूर्खता, लोभ और दुराचाररूपी जंगली घास	संसारकी सेवा या संसारके काममें लगा हुआ मनुष्य
और कॉॅंटे उसमें आप-से-आप पैदा हो जायँगे। जो	भगवान्के साम्राज्यका ही सेवक है, भगवान् सदा उसके
लोग अपने धन, बल, बुद्धि और समयका सदुपयोग	साथ रहते हैं और उसकी रखवाली करते हैं।
दूसरोंके कल्याणके लिये नहीं करते, वे वास्तवमें पतनका	नर और नारायणका सहयोग
मार्ग अपनाये हुए हैं। उन्हें न तो इस लोकमें सुख मिल	ईश्वर सर्वशक्तिमान् है। वह निमिषमात्रमें जो चाहे
सकता है और न परलोकमें। (गीता ४।३१)	कर सकता है। पर उसका विधान यह है कि वह
सभी कामोंद्वारा योग	संसारका बहुत-सा काम मनुष्यके द्वारा ही कराता है।
प्रचलित विचारधाराके अनुसार केवल पूजा, ध्यान,	हममेंसे प्रत्येकको उसने कुछ योग्यता प्रदान की है और
जप या तपस्या करके ही भगवान्से सम्पर्क किया जा	कुछ काम सौंपे हैं। किंतु वह जबर्दस्ती कुछ भी नहीं
सकता है, किंतु कुरुक्षेत्रके मैदानमें श्रीकृष्ण और	कराना चाहता। हाँ, वह यह अपेक्षा अवश्य करता है
अर्जुनका परस्पर मिलन तथा सहयोग यह प्रमाणित	कि हम स्वेच्छासे अपने कर्तव्यका पालन करें, अपनी
करता है कि परमात्मासे एकत्व अथवा योग सभी स्थानोंपर	शक्तियोंका जन-कल्याणके लिये सदुपयोग करें और
और सभी कर्मोंद्वारा स्थापित किया जा सकता है।	उसकी सरकारके वफादार कर्मचारीकी तरह उसके लिये
दूसरोंकी या समाजकी भलाईके सभी काम यज्ञकी	और अपने सहजीवियोंकी भलाईके लिये काम करें।

भाग ९२ बाइबिलके अनुसार हम भगवान्के सहकर्मी हैं। हुए कर्म बन्धनमें नहीं डालते, बल्कि मोक्षदायक होते हैं। यहूदी-धर्मकी भी ऐसी ही मान्यता है। एक यहूदी गीताके अन्तमें इसी उपदेशको बडे मार्मिक शब्दोंमें विद्वान्के अनुसार—'यहूदी-धर्मकी उत्कृष्ट शिक्षाओंमें दोहराया है—'जहाँ योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हैं और एक यह इन पंक्तियोंके लेखकको बहुत पसन्द है कि जहाँ धनुषधारी अर्जुन हैं, वहाँपर श्री, विजय, विभृति संसारके मुक्ति-प्रयासोंमें मनुष्य भगवान्का साझीदार है। और अचल नीति है।' (१८।७८) इस पृथ्वीको परमात्माके साम्राज्यका एक प्रान्त बनानेके कामका बँटवारा सुखद प्रयत्नमें नर और नारायण मिल-जुलकर एक साथ संसारमें कोई भी काम सम्पन्न करनेके लिये मनुष्यको परमात्माका सहारा और सहयोग चाहिये। नर काम करते हैं। मानवकी श्रेष्ठता यह है कि वह काम और नारायणके संयुक्त प्रयासोंसे ही संसारका कारोबार करनेमें स्वतन्त्र है। यदि वह चाहे तो ईश्वरके साथ काम कर सकता है। किंतु इस दैविक सहकारिताका वह चलता है और विकास होता है। तिरस्कार भी कर सकता है और अपने लिये विपत्ति एवं मोटे शब्दोंमें कहा जाय तो मनुष्य और भगवान्के बरबादी मोल ले सकता है।' बीच कामके बँटवारेका यही नियम है कि जिस कामकी महाभारत-युद्धमें अर्जुनके रथका भगवान् श्रीकृष्णद्वारा योग्यता मनुष्यमें है, उसे मनुष्यको स्वयं ही करना चाहिये संचालन करना पुरुष और पुरुषोत्तमके बीच बहुमुखी या किसी अन्य मनुष्यसे करवाना चाहिये। भगवानुको उसी सहकारका प्रत्यक्ष प्रमाण है। वह गुरु और शिष्य, कामके लिये कष्ट देना चाहिये, जो हम खुद न कर सकें, भगवान् और भक्त, स्वामी और सेवककी साझेदारी तो जो हमारी सामर्थ्यके बाहर हो। मनुष्य जब अपनी भूमिका पूरी तरह निभा देता है; तो भगवान् स्वयं ही उसकी मदद है ही, उससे भी बढ़कर संसार-व्यवस्थाको बनाये रखनेके लिये दो मित्रोंके संयुक्त श्रमका चित्र भी है, जब करते हैं। युवक विद्या सीखता है, परमात्मा उसे विद्वान् मनुष्य कोई भी बड़ा या लोकहितका काम करता है तो बना देते हैं। रोगी बीमारीका उपचार कराता है, भगवान् परमेश्वर उसका मित्र, गुरु और मार्गदर्शक बनकर उसके उसे स्वस्थ कर देते हैं; किंतु शरणागित तथा प्रपत्तिकी साथ रहते हैं और उसकी सहायता तथा रक्षा करते हैं। आड़में ऐसी आशा रखना नितान्त मूर्खता है कि मैं बड़ा जब एक मनुष्य किसी दूसरे मनुष्यकी सेवा या भक्त हूँ, इसलिये कुछ भी नहीं करूँगा तो भी भगवान् मेरे घरमें झाड़ लगायेंगे, मेरा खाना पकायेंगे और ग्रास बनाकर सहायता करता है तो मानो वह उसके साथ सहयोग करता है और जहाँ मनुष्य एक-दूसरेकी या सबकी मेरे मुखमें रख देंगे। इस प्रकारकी विचारधाराके मनुष्यकी भलाईके लिये सहयोग करते हैं, वहाँ श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् कभी सहायता नहीं करते हैं। उनपर अनुग्रहकी वर्षा करते हैं। परमात्माके रूपमें श्रीकृष्ण सदा काममें लगे रहते हैं; गीतामें जो यज्ञ सिखाया गया है, उसमें भी मनुष्योंके यद्यपि उन्हें तीनों लोकोंमें कुछ भी कर्तव्य नहीं है तथा परस्पर और देवताओंके साथ सहयोगपर बहुत जोर दिया किंचित् भी प्राप्त होनेयोग्य अप्राप्य नहीं है। (३। २२) गया है। (३।१०-१३) किसी दूसरे या समाजकी अवतार और गीताके प्रवर्तकके रूपमें भी श्रीकृष्णने भलाईका प्रत्येक कार्य उसके साथ सहयोग है अर्थात् अथक परिश्रमका उज्ज्वल उदाहरण ही हमारे सामने यज्ञकार्य है। सहयोगद्वारा मनुष्य अपनी सीमित शक्तियोंको रखा। उन्होंने अगर घण्टा-दो-घण्टा अर्जुनको धर्मोपदेश प्राय: असीम बना सकता है। यज्ञ वह कामधेनु है, जो दिया तो १८ दिन युद्धमें उसके सारिथ-जैसा निम्न मानवकी सब इच्छाओंको पूरी करती है। यज्ञके लिये किये कोटिका काम भी करते रहे और हर रातको जख्मी तथा

संख्या १२] अर्जुनका रथ ************************ थके हुए घोड़ोंकी सेवा-शुश्रुषा करते रहे। परब्रह्म तथा बनकर निरन्तर साथ ही बैठते थे और एक ही उद्देश्यको जगद्गुरु श्रीकृष्णका अनुसरण करके यदि हमारे श्रेष्ठजन लेकर काम करते रहे। अर्जुनने भगवान् कृष्णकी शरण भी इसी तरह राष्ट्रकी और दीन-दुखियोंकी सेवामें लग ली, स्वयं भगवान्के श्रीमुखसे गीताका उपदेश सुना और जायँ तो हमारे देशमें ही क्या, सारे संसारके पुनरुत्थानमें विराट्रूपके भी दर्शन किये, जिसके कारण उसके ज्ञान-क्रान्ति ला सकते हैं। पर क्या इधर ध्यान है? चक्षु खुल गये और उसका मोह नष्ट हो गया। सारांश गीता भक्तों, ज्ञानियों, ध्यानियों और योगियोंको यह कि अर्जुनको वे सभी पदार्थ प्राप्त थे, जिनके लिये कर्तव्य-कर्मसे किसी प्रकारकी छूट नहीं देती; बल्कि आजकलके भक्त लालायित रहते हैं और जिनमेंसे एकको भी पा जानेपर वे अपनेको कृतकृत्य, परमपूजनीय और साधक और साधु यदि अपनेको तनिक भी श्रेष्ठ मानते हैं तो उन्हें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि स्वयं भगवान्तक मान बैठते हैं और दूसरोंसे पुजवाने उनको जिम्मेदारी जनसाधारणको अपेक्षा कम नहीं, वरन् लगते हैं। बड़े महत्त्वकी बात यह है कि इन सम्पूर्ण अधिक है। श्रेष्ठ जनोंका आचार-व्यवहार सबके लिये उपलब्धियोंके होनेपर भी अर्जुनको उसकी सामाजिक अनुकरणीय होना चाहिये; क्योंकि वे जैसा आचार करते जिम्मेदारीसे छुटकारा न मिल सका। उसे लड़ाईमें लगना हैं, आम जनता भी उसीका अनुसरण करती है। वह जो ही पड़ा, आततायियोंका संहार करना ही पड़ा। कुछ भी प्रमाण कर देते हैं, दूसरे लोग भी उसीके अनुसार गीताके अनेक श्लोकोंमें स्वधर्म या कर्तव्य-व्यवहार करते हैं। (३।२१) जहाँ भक्त और ज्ञानी पालनपर बडा जोर दिया गया है। लोकसंग्रह अथवा समाज-कल्याणके सभी काम मुक्ति और भुक्तिके देनेवाले अपनी सामाजिक और राष्ट्रिय जिम्मेदारियोंकी अवहेलना करते हैं, वहाँ दूसरे लोग भी वैसा ही करने लगते हैं। होते हैं, किंतु योग्यता, रुचि और परिस्थितिके अनुसार मनुष्योंको अपनी भूमिका निभानी है सबका स्वधर्म अलग-अलग होता है। आजकलके भक्तोंमें बहुतोंका यह विचार रहता है सेवा, लोक-संग्रह, दुष्टदमन और जीवन-निर्वाहके कि उनका काम तो केवल ध्यान, जप और भजन करना सभी काम भगवान्की आराधना हैं और परमात्मा तथा है, बाकी सारा काम उन्हें भगवान्के आसरे छोड़ देना मोक्षको प्राप्त करानेमें समर्थ हैं। किंतु यह तभी हो चाहिये; क्योंकि जो भक्त भगवान्की शरणमें चले जाते सकता है, जब सारे कार्योंको निष्काम अर्थात् नि:स्वार्थ हैं, उनकी देख-भालकी पूरी जिम्मेदारी भगवान् अपने भावसे अपना कर्तव्य समझकर, दूसरोंकी भलाईके लिये ऊपर ले लेते हैं। इस विचारधाराका परिणाम यह होता किया जाय और उनके फलस्वरूप जो कुछ मिले उसे है कि धर्मवान् लोग समाजके प्रति उदासीन हो जाते हैं भी प्राणिमात्रमें रहनेवाले भगवान्की सेवामें लगा दिया जाय। ऐसा करके ही परमेश्वरसे पूर्ण, नित्य और और सत्ताकी बागडोर एवं देशकी अर्थ-व्यवस्था उन लोगोंके हाथोंमें चली जाती है, जिनका धर्मके सिद्धान्तोंमें चिरस्थायी योग स्थापित किया जा सकता है, जिसमें विश्वास स्वाँगमात्र है। जिस समाजमें बहुत-से लोग पूजा और सेवा दोनोंका सन्तुलित मिश्रण होना आवश्यक अकर्मण्य हैं, वह समाज यदि दुर्बल, दरिद्र और दुखी है। गीतामें इसी योगपर जोर दिया गया है—मुझे सदा है तो इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है! याद करता रह और युद्ध भी कर—'मामनुस्मर युध्य अर्जुन श्रीकृष्णका परम मित्र, सखा तथा भक्त था। च'। और, रथमें बैठे हुए उद्योगशील अर्जुन तथा उसे श्रीकृष्णके दर्शन और सम्पर्कके अनगिनत अवसर श्रीकृष्णने यही योग दर्शाया है। मनुष्यमात्रके लिये यही

योग सुलभ और सर्वश्रेष्ठ है।

मिले। युद्धके १८ दिन तो वे दोनों रथी और सारथि

कब खुलेंगे तेरे अन्तर्चक्षु ?

(डॉ० श्रीशैलजाजी अरोड़ा) सम्पूर्ण सृष्टिमें मनुष्य ही एकमात्र ऐसा प्राणी है,

इसी प्रकार हमारी स्थूल दृष्टि दूरदर्शितासे इतनी

जिसके पास ईश्वरप्रदत्त बुद्धि है, विवेक है, जिससे वह परे होती है कि हम गाहे-बगाहे ईर्ष्या-द्वेषके दुष्चक्रमें सम्यक् सोच-विचार कर सकता है। वस्तृत: हमारी स्थूल फँस जाते हैं। जब हम किसी व्यक्तिकी सफलताको

दृष्टि जो देखती है, जैसा सोचती है, वैसा ही हमारा संसार

निर्मित हो जाता है। इस संसारके बाहर न तो हम सोच-समझ सकते हैं और न ही सोचनेका प्रयास ही करते हैं।

सत्य तो यह है कि उसी सीमाके अन्दर रहते हुए हम अपना पूरा जीवन कालको सौंप देते हैं। यही कारण है कि

हम अपनी गलत आदतोंको ढोते रहते हैं। अपनी संकीर्ण और स्वार्थपरक सोचके बाहर जाकर परमार्थ और

परोपकारका कार्य नहीं कर पाते। हमारी असंख्य समस्याओंका प्रमुख कारण भी यही संकुचित दृष्टि ही है। यदि इसके

परे जाकर हम सुक्ष्म दुष्टिका विकास कर लें तो निश्चित रूपसे हमारे जीवनकी दिशा और दशा दोनों बदल जायँगी। परिणामस्वरूप हम मानव-जीवनको जो ईश्वरकी ओरसे हमें अनुपम उपहार मिला है, उसे बेहतर तरीकेसे समझने

और जीनेमें सफल हो सकेंगे। प्राय: हम किसी भी व्यक्तिके स्थूल आवरणको देखते हैं, वस्तुओंकी बाह्य चमक-दमकसे प्रभावित हो

जाते हैं और उसीमें ही आसक्त भी हो जाते हैं। देखा जाय तो हमारा यह नजरिया सही नहीं होता; क्योंकि स्थूल

आवरणोंसे व्यक्ति और वस्तुकी जो पहचान होती है, वह स्थायी नहीं होती। स्थायी होती है भीतरकी शक्ति, अन्तरकी चेतना, लेकिन दुर्भाग्यवश उस शक्ति और चेतनाकी ओर

हमारा ध्यान ही नहीं जाता। हम बाहरी आकार-प्रकारसे

सम्मोहित होकर उसीका ध्यान करते हैं, उससे प्यार करते

हैं और सदैव उसके पास रहना चाहते हैं। यही मोह या

आसक्ति हमारी प्राण-ऊर्जाको उस व्यक्ति या वस्तुके स्थूल आवरणसे अन्तरंग रूपसे जोड़ देती है और हम जीवनके वास्तविक लक्ष्यसे कहीं दूर चले जाते हैं। हमें जुड़ना तो

चाहिये था परमतत्त्व परमात्मासे किंतु हम जुड़ जाते हैं प्रभुकी बहिरंगा शक्ति मायासे, जिसका परिणाम होता है देखते हैं तो हम उसे पचा नहीं पाते और अनावश्यक

रूपसे उस व्यक्तिसे ईर्ष्या-द्वेष करने लगते हैं। हमारा ध्यान उस व्यक्तिविशेषकी सफलताकी ओर रहता है। हम इस बातपर विचार नहीं करते कि उस सफलताके पीछे कितना चिन्तन, परिश्रम और पुरुषार्थ किया गया

है, जिससे प्रेरणा लेकर हम भी सफलताकी सीढियोंपर आरूढ हो सकते थे। होना तो यह चाहिये था कि हम उसकी सफलतामें लगे अथक श्रमका सम्मान करते और अपने अन्दर भी वैसा ही जज्बा पैदा कर पाते। ईर्ष्या-

द्वेष एक नकारात्मक विचार है, जो हमें बन्धनमें डालता है। इसी तरह धनी व्यक्तिके ऐश्वर्य एवं साधन-सामग्रीको न देखकर उसके द्वारा अर्जित शुभकर्मोंकी पूँजीको देखना चाहिये और उसे संचित करनेका

यथासम्भव प्रयास करना चाहिये। कई बार व्यक्ति किसी परिस्थितिसे स्वयंको इतना अधिक जोड़ लेता है कि अमिट स्मृतिके रूपमें वह दृश्य उसके सम्पूर्ण जीवनमें छाया रहता है और उसके वर्तमान

जीवनको सतत प्रभावित करता रहता है। परिस्थितिके परिवर्तित हो जानेपर भी किसी व्यक्तिविशेष या वस्तुके प्रति मनमें राग-द्वेष, भय, क्रोध इत्यादि नकारात्मक भाव बने रहते हैं, जो हमारे अगामी जन्मोंकी गतिको प्रभावित करते हैं।

कई बार हम लोभ-लालचमें फँसकर अपने सिद्धान्तोंकी बलि दे बैठते हैं और कभी-कभी मिथ्या अहंकारके वशीभूत होकर स्वजनोंका ही तिरस्कार कर देते हैं। कभी एकान्तमें बैठकर इन समस्त स्थितियोंपर गम्भीरतापूर्वक विचार करना

चाहिये और जितना जल्दी हो सके, इन विकारोंसे मुक्ति

पानेका उपाय करना चाहिये। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने मानवमात्रको अनासक्तिका अद्भुत पाठ पढ़ाया है ताकि वह आत्मकल्याणका

आवागमनका अन्तहीन सिलसिला, जो हमें दु:खोंके सागरसे अन्तिम लक्ष्य प्राप्त कर सके। गीतामें अर्जुनके माध्यमसे Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha बाहर निकलन हो नहीं देता।

कब खुलेंगे तेरे अन्तर्चक्षु ? संख्या १२] आसक्तिसे रहित होकर सदा कर्तव्यकर्म करता रहे ताकि यह कथन बड़ा ही मननीय है— वह परमात्माको प्राप्त हो जाय। गीताके तीसरे अध्यायमें मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय। अर्जुनसे भगवान्ने स्वयं कहा है— निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशय:॥ तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर। (गीता १२।८) अर्थात् मुझमें मनको लगा और मुझमें ही बुद्धिको असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥ (गीता ३।१९) लगा। इसके उपरान्त तू मुझमें ही निवास करेगा, इसमें अनासक्ति एवं निरासक्तिके भावका अनुपम उदाहरण कुछ भी संशय नहीं है। यदि हम अपने अन्दर अवस्थित हमें राँका एवं बाँका नामक भक्तोंके जीवनसे मिलता है। परमेश्वरका दर्शन कर सकें तो हमारे मनमें संसारके प्रत्येक राँका एवं बाँका दोनों पति-पत्नी भगवान् शिवके परम प्राणीके प्रति सम्मान और ईश्वरत्वका भाव जाग्रत् होगा, भक्त थे। वे प्रतिदिन जंगलसे लकड़ियाँ काटकर लाते और जिससे हमारे मनका विस्तार होगा और कल्याणका मार्ग उन्हें शहरमें बेचकर जीवन-निर्वाह करते थे। उनकी दयनीय प्रशस्त होगा। यदि हम बीजके स्थूल आवरणतक ही अपने दशाको देखकर एक दिन माता पार्वतीको उनपर दया आ आपको सीमित कर लेंगे तो उसे लघु ही समझते रहेंगे। गयी और भगवान् आशुतोषसे प्रार्थना की कि वे उन्हें यदि उसके अन्दर निहित सम्भावनाओंको देखनेका साहस समुचित धन प्रदान करें ताकि उनका भक्त विपन्नतासे जुटायेंगे तो हमें ज्ञात होगा कि उस बीजके अन्दर किसी परेशान न हो। अन्तर्यामी भगवान् शिव जानते थे कि उनका बड़े वृक्षके रूपमें परिणत होनेकी अपार सम्भावनाएँ मौजूद भक्त तो निरासक्त है और धनको स्वीकार नहीं करेगा। हैं। यदि हम अपनी दूरदृष्टिका विकास करके अपने अन्तर्चक्षु फिर भी माता पार्वतीका मन रखनेके लिये उन्होंने भक्तकी खोलनेका साहस बटोर लेते हैं तो हमारा जीवनरूप सुमन आर्थिक सहायता करनेका निश्चयकर एक दिन उनके महककर खिल उठेगा; क्योंकि यही एक ऐसा माध्यम है, मार्गमें कुछ स्वर्णकी अशरिफयाँ डाल दीं। राँका और बाँका जिसके द्वारा हमें अपने उद्गम परमपिता परमेश्वरका पावन लकड़ियाँ लेकर शहरको आ रहे थे। राँका आगे चल रहे स्पर्श, सान्निध्य और साहचर्य मिल सकेगा। थे और बाँका पीछे आ रही थी। रास्तेमें राँकाने सोनेकी जीवमात्रके सुख और परमकल्याणके लिये चिन्तनशील अशरिफयाँ पडी देखीं तो सोचा कि इन्हें देखकर बाँकाका एवं प्रयासरत रहना संतोंका सहज स्वभाव होता है। इसलिये स्त्रीसुलभ मन स्वर्णके लोभमें आकर कहीं डोल न जाय, मनुष्यको प्रमादमें पड़ा देखकर संतजन चिन्तित हो कह इसलिये वे अशरिफयोंपर मिट्टी डालने लगे। इतनेमें बाँका उठते हैं—'हे मानवश्रेष्ठ! तुम इस जगत्में आत्माके भी आ गयी और जब उसने राँकाको ऐसा करते देखा तो कल्याणके लिये भिक्षु अर्थात मुमुक्षु बनकर आये हो, न तपाकसे बोली—'स्वामी! मिट्टीपर मिट्टी डालनेसे क्या लाभ कि भोग-विलास और जगत्का खेल-तमाशा देखनेके होगा ? आप व्यर्थमें ही परिश्रम कर रहे हैं। इस बातको लिये तुम्हारा पदार्पण हुआ है। मौत घात लगाये बैठी है, सुनकर राँका भौचक्के रह गये और सोचने लगे कि उसकी काल सिरपर सवार है। न जाने कब वह तुझे अपना निवाला पत्नी तो निरासक्तिमें उससे भी एक कदम आगे है। उन्होंने बना ले। इस दुनियामें हर रोज लगभग अढ़ाई लाख मानव विचार किया कि मेरी दृष्टिमें तो अभीतक भी मिट्टी और कालके मुँहमें समा जाते हैं। तू भी उसी कतारमें खड़ा है, सोनेमें भेद है, परंतु मेरी पत्नीके लिये तो सोना और मिट्टी यह मत भूल। अत: इससे पहले कि तुम्हारा स्थूल शरीर कालका ग्रास बन जाय, अपने अन्तर्चक्षु खोलिये और पूरे एकसमान हैं। कितनी विलक्षण है बाँकाकी दृष्टि! गीतामें भगवान् अर्जुनसे बार-बार कहते हैं कि तू जतनके साथ अविलम्ब जुट जाइये; क्योंकि समय थोडा मुझमें मन लगा, मेरा ही चिन्तन करते हुए सम्पूर्ण है और लक्ष्य बहुत बड़ा।' महापुरुषकी यह देशना उचित कर्मोंका फल मुझको ही अर्पितकर ताकि तेरा कल्याण ही जान पड़ती है। इसलिये कहा है— हो जाय। गीताके बारहवें अध्यायमें कहा गया भगवानुका बनकर आया जग में भिक्षु। कब खुलेंगे तेरे अन्तर्चक्षु॥

स्वामी विवेकानन्दने कहा था

(डॉ० श्रीशोभनाथलाल 'सौमित्र')

अमेरिकाके शिकागो नगरमें दिसम्बर १८९३ ई० कहा—'ब्रदर्स एण्ड सिस्टर्स आफ अमेरिका'। सारा

में आयोजित अखिल विश्व सर्वधर्म-सम्मेलनमें प्रथम हाल तालियोंकी गड़गड़ाहटसे गुँज उठा। श्रोता अपनी

व्याख्यानके पश्चात् ही स्वामी विवेकानन्द-(जन्म १२ कुर्सियोंसे खड़े हो-होकर उन्हें साधुवाद देने लगे। फिर

जनवरी १८६३)-की ख्याति विद्युत्-धाराकी भाँति विश्वमें तो उस विश्व-सम्मेलनमें उन्होंने जो कुछ कहा-

फैल गयी। रेशमी वस्त्रों तथा पट्टेदार मुरेठामें स्वामीजीका

कान्तिमान गौर वर्ण अपूर्व ज्योतिपुंज-सा दमक रहा था।

दस हजार श्रोताओंसे खचाखच भरे हुए व्याख्यान-

कक्षके मंचपर खडे होकर सम्बोधित करनेका यह उनका पहला अवसर था। इस सम्मेलनमें भाग लेनेके

लिये वे भारतसे अमेरिका आ तो गये, परंतु इतने बड़े

जनसमुदायके सम्मुख खड़े होकर कुछ कहनेमें सम्भवत: उन्हें कुछ हिचिकचाहट अनुभूत हो रही थी। इसलिये

वक्ताओंमें उनका क्रम आनेपर उद्घोषके द्वारा जब उन्हें

मंचपर बुलाया जाता था तो वे 'थोड़ी देरके बाद' का निवेदनकर अपना क्रम आगेके लिये टलवा लेते थे। परंतु

यह क्रम कबतक आगे टलता रहता? इस बार उद्घोषकने घोषणा कर दी कि अब भारतसे पधारे युवा संत स्वामी विवेकानन्द बोलेंगे। लोगोंकी दृष्टि इस भारतीय युवा

संतकी ओर बरबस ही मुड़ गयी। कुछ काना-फूँसी भी हुई-यह नवयुवक भला क्या बोलेगा! क्या भारतका

प्रतिनिधित्व यह युवक ही करेगा? आदि-आदि। उनका उद्दीप्त व्यक्तित्व जितना आकर्षक था, आयु उतनी ही

कम। तीस वर्षीय युवक, स्वामीजी विश्वके उत्कृष्ट श्रोताओंको सम्बोधित करनेके लिये मंचपर पधारे। उस

समय लोगोंके चेहरेपर उनके भारतीय अध्यात्म, धर्म एवं दर्शन-सम्बन्धी ज्ञान तथा अनुभवके बारेमें शंका एवं

अविश्वासकी रेखाएँ उभर आयी थीं।

स्वामीजीने मन-ही-मन एक क्षण गुरुदेव रामकृष्ण परमहंसजी एवं माँ शारदाका स्मरण किया। 'लेडीज एण्ड जेण्टिलमेन' के घिसे-पिटे परम्परागत सम्बोधनकी

जगह उन्होंने भाषणके आरम्भमें बड़े भावपूर्ण शब्दोंमें

अमेरिकाके समाचारपत्रोंने उसे 'अभूतपूर्व की संज्ञा देकर प्रमुखतासे छापा। स्वामीजी क्या बोल गये, उन्हें स्वयं कुछ ज्ञात नहीं हुआ। प्रभु-कृपासे सरस्वतीने उनके

जिह्वाग्रपर बैठकर भारतीय अध्यात्म एवं दर्शनकी सार्वभौमिक विवेचना करा दी। उसी दिन स्वामीजी एकाएक अन्तरराष्ट्रिय व्यक्ति बन गये। कैसी विडम्बना

है कि पाश्चात्त्य जगत्ने हमें स्वामीजीकी पहचान करायी। अमेरिका-प्रवास-कालमें स्वामीजीने जहाँ-तहाँ

अनेक व्याख्यान दिये, प्रवचन किये, प्रश्नोंके समाधान किये। अनेक अमेरिकी नर-नारी उनके शिष्य हो गये, उनके चरणोंमें स्वयंको समर्पित कर दिया। एक स्थलपर

एक सज्जनने उनसे पूछा—'स्वामीजी! आपके मतानुसार सभी धर्मोंका मूल उद्देश्य एक ही है, अमुक धर्म अच्छा, अमुक धर्म बुरा है, ऐसी बात नहीं, तो फिर विश्वमें धार्मिक असिहष्णुता, विद्वेष तथा साम्प्रदायिक वैमनस्यके

झगड़े क्यों दिखायी पड़ते हैं? उस दिनके प्रवचनके दौरान स्वामीजीने एक कथा कही, जिससे इस प्रश्नका समाधान हो जाता है।

उन्होंने कहा-एक कुएँमें एक मेढक रहा करता था। कुएँके अन्दर ही वह जीवन-यापन कर रहा था।

अन्दरके कीड़ों-मकोड़ोंको खा-खाकर वह हष्ट-पुष्ट हो गया था। कूप-जल ही उसका घर और कुएँकी

दीवारोंसे घिरा वायुमण्डल ही उसका संसार था। उसे क्या मालूम कि इस कुएँसे बाहर विश्व कितना बड़ा है ?

भाग ९२

बाह्य-जगत्से वह सर्वथा अनिभज्ञ एवं अपरिचित था। एक दिन उस कुएँमें एक समुद्री मेढक कहींसे भटकता हुआ आ गिरा। कूप-मण्डूक इस नये अतिथिको

स्वामी विवेकानन्दने कहा था संख्या १२] पाकर बड़ा चिकत हुआ। अभीतक उसे यह भी नहीं जौं गुर मिलहिं बिरंचि सम।' इस बार उसने अपनी मालूम था कि बाहर उसके और भी सजातीय हो सकते सारी शक्ति समेटकर कुएँके एक छोरसे दूसरे छोरतक हैं। कुएँके सीमित घेरेमें अपने आहारके इस नये पूरी छलाँग लगायी और हाँफता हुआ बोला—'तेरा हिस्सेदारको पाकर उसे क्षोभ भी हुआ, परंतु वह मजबूर समुद्र इससे बड़ा तो हो ही नहीं सकता।' अपना प्रामुख्य था, करता भी क्या? समुद्री मेढक अपने अतिथेयसे जतानेकी अदामें गर्वसे छाती फुलाये कूप-मण्डूक अत्यन्त प्रसन्न था। सिन्धु-मण्डूकसे पुनः घमण्डमें बल-पौरुषमें बीस था भी। कुछ दिनोंके पश्चात् ऊपरी क्षोभ जाता रहा। कूप-मण्डूकने अतिथिसे पूछा—'भाई! कहा—'कहो, कहो, इससे बड़ा तो हो ही नहीं सकता।' हमलोग इतने दिनोंसे एक साथ रह रहे हैं, परंतु अपना 'अरे मूर्ख! समुद्रकी विशालता तुम्हें कैसे समझायी परिचय नहीं दिया। तुम्हारा नाम-ग्राम क्या है?' जाय ? विश्वके सारे कुएँ भी मिलकर समुद्रकी विशालताको 'मेरा नाम सिन्धु-मण्डूक और निवास समुद्र है। नहीं प्राप्त कर सकते। लाखों-करोड़ों कुएँ समुद्रके गर्भमें कुछ लोग मुझे समुद्री भी कहते हैं। तुम्हारा नाम?' विलीन हो जा सकते हैं। तुम तो अपने इस कुएँको ही 'मैं कूप-मण्डूक नामसे जाना जाता हूँ। कितना सबसे बड़ा मान बैठे हो।' सिन्धु-मण्डूकने उत्तर दिया। बड़ा है तुम्हारा समुद्र ?'--कूप-मण्डुकने जिज्ञासा व्यक्त स्वामी विवेकानन्दके मुखसे सिन्धुमण्डूकका यह उत्तर सुनकर उस अमेरिकी जिज्ञासु-प्रश्नकर्ताका तो की। 'बहुत बड़ा'—अतिथि सिन्धुमण्डूकका संक्षिप्त तुरंत समाधान हो गया, परंतु वहाँपर बैठे हुए अन्य लोगोंको समझाते हुए स्वामीजीने कहा—'भाई! अपने-उत्तर था। 'बहुत बड़ा' का बोध कूप-मण्डूकके दिमागके अपने धर्मके घेरेमें घिरे रहकर उसे ही सर्वोपरि और श्रेय बाहरकी बात थी; क्योंकि कुएँके घेरेसे बड़ा उसने मानना तथा दूसरोंके धर्मको हेय कहना ही धार्मिक अभीतक कुछ देखा ही नहीं था। इसलिये अपनी कटुता और साम्प्रदायिक असिहष्णुताका कारण है। जिज्ञासाको अपने ही उत्तरसे सन्तुष्ट करनेके अभिप्रायसे वस्तृत: अपने घेरेसे बाहर निकलकर प्रत्येक प्राणीमें कूप-जलमें ही एक छोटी-सी छलाँग लगाकर उसने सर्व-धर्म-सम-भावकी उदारताके विकाससे ही परस्पर पीछे मुड़कर अतिथिसे कहा—'इतना बड़ा होता होगा सौमनस्य और विश्वशान्ति स्थापित हो सकती है। सभी समुद्र।' धर्म समुद्रकी विशालता लिये हुए हैं। अनुयायियोंकी परंतु समुद्रीके 'इससे भी बड़ा' कहनेके पश्चात् संकुचित मनोवृत्ति ही उन्हें कूप-मण्डूकता प्रदान करती उसका दिल बैठ गया। इस बार उसने कुएँके एक छोरसे है। अपने ही घेरेमें गूलरके कीड़ोंकी भाँति घिरे रहनेकी मध्यतक कुछ लम्बी दूरीकी छलाँग लगाते हुए कहा— संकुचितता हमारे हृदयोंमें उदारता, स्नेह और सौहार्दके 'तब इतना बड़ा होता होगा तेरा समुद्र।' वह मन-ही-बीज अंकुरित नहीं होने देती। मन प्रसन्न हो रहा था समुद्रीकी खामोशीपर और समुद्री स्वामीजीको इस संसारसे विदा हुए (४ जुलाई हैरान था कि समुद्रकी विशालता, व्यापकता और १९०२ से अबतक) कोई एक सौ सोलह वर्षसे अधिक व्यतीत हो चुके हैं, परंतु उनके विचार आज भी उतने गहराईका कूप-मण्डुकको बोध कैसे कराये! वह कोई युक्ति नहीं सोच पा रहा था, इसलिये इतना ही कह ही सत्य और सार्थक हैं। हमें धर्म-समुद्रकी विशालताको पाया—'इससे भी बहुत-बहुत बड़ा।' परंतु कुएँका समझना और धर्म-कूपकी सीमित-सीमाका विस्तारकर मेढक तो कूप-मण्डुक ही ठहरा। 'मूरुख हृदयँ न चेत वास्तविक धर्म भगवान्का दर्शन करना चाहिये।

कलियुगके अन्तमें— कहानी—

(श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')

[आपने यदि वैज्ञानिक कही जानेवाली कहानियोंमेंसे कोई पढ़ी हैं तो देखा होगा कि किस प्रकार दो–चार शती आगेकी

एक काल्पनिक अनुमानमात्र प्रस्तुत करती है; किंतु यह सर्वथा निराधार नहीं है। पुराणोंमें कलियुगके अन्त समयका जो वर्णन

'यह पुरुवंशी प्रतीपात्मज देवापि राजर्षि मरुको

अभिवादन करता है!' हिमालयका अत्यन्त दुर्गम दिव्यदेश

कलाप ग्राम, जो नित्यसिद्ध योगियोंकी साधनभूमि है; जो

मनुष्य तो दूर, गन्धर्वादि उपदेवताओंके लिये भी अगम्य

एवं अदृश्य है, उसी सिद्धभूमिमें आज कुछ हलचल जान पडती थी। जहाँ अखण्ड शान्ति, नित्य उद्रिक्त

सत्त्वगुण सदा रहता है, वहाँ किंचित् भी रजस्-क्रियाका

उद्भव आश्चर्यकी ही बात है। पूरा युग लक्ष-लक्ष वर्ष

व्यतीत हो गये, ऐसा तो कभी नहीं हुआ कि प्रयत्न

करनेपर भी समाधिमें चित्तकी स्थिति न हो। विवशत: राजर्षि देवापि अपने आसनसे उठे। द्वापरका जब अन्त

होनेवाला था, उससे कुछ ही पूर्व ये भीष्मपितामहके

पिता शान्तनुके बडे भाई यहाँ आये थे इस साधनभूमिमें।

इनका साधनकाल सबसे थोडा रहा था। महर्षियोंके

समीप जाकर उनके एकान्तमें बाधा देना ठीक नहीं लगा, अतएव अपनेसे कुछ ही शताब्दी पूर्व साधन-दीक्षित

होनेवाले राजर्षि मरुके समीप वे चले आये। यह

सिद्धभूमि, यहाँ शताब्दियोंका मुल्य हमारे आपके घण्टों-

जितना भी कठिनाईसे ही होगा। राजर्षि मरु द्वापरके

दुष्टिमें रखा गया है।

है, वह सत्य है; क्योंकि पुराण सर्वज्ञ भगवान् व्यासकी कृति हैं। उनमें भ्रम, प्रमाद सम्भव नहीं है। अत: उन पुराणोंके वर्णनोंको

परिस्थितिका उनमें अनुमान किया जाता है और वह अनुमान अधिकांश निराधार ही होता है। यह कहानी भी उसी प्रकारकी

किस स्तरपर पहुँच चुकी होगी और मुख्य घटनाएँ क्या होंगी। उनके प्रमुख पात्र कौन-से होंगे।—लेखक]

प्रसिक्षणं क्रिताकी इंदिन के कि कि कि प्रमानिक के प्रमितिक के प्रमानिक के प्रमितिक के प्रमानिक के प्र

गयी थी यहाँ आकर।

मुख्याधार बनाकर कल्पनाने कहानीको यह आकार दिया है। अवश्य ही आजके सामान्य स्वीकृत एवं सम्भाव्य वैज्ञानिक तथ्योंको

यह कलिसंवत् ५०६४ है विक्रम संवत् २०२० में। कलियुगकी कुल आयु (पूरा भोगकाल) ४३२००० वर्ष है। इसलिये

जैसे लगते थे और दोनों राजर्षियोंमें अच्छी मैत्री भी हो

देवापिका अभिवादन करके उनका अभिनन्दन करता

है।' मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके पुत्र कुशके वंशमें अग्निवर्णके

पौत्र हैं ये राजर्षि मरु। ये भी ध्यानस्थ नहीं थे। उठकर

देवापिको अंकमाल दी और आसन अर्पित किया उन्होंने।

प्रलम्बबाह्, कमलदल-विशाल लोचन, उन्नत नासिका,

प्रशस्त भाल एवं वक्ष और पाटल गौर वर्ण, अत्यन्त

सुन्दर, सुगठित, किंचित् तप:कृश देह, जटाजूट, बड़े

श्मश्रुकेश, केवल वल्कल परिधान—दोनों ही स्रष्टाकी

अनुपम कृति लगते थे। राजर्षि मरुका शरीर देवापिसे विशाल था और आयुमें भी वे बड़े थे। देवापि उनका

सम्मान अपने अग्रजके समान करते थे; किंतु राजर्षि मरु

देवापिने कहा—'अनेक बार प्रयत्न करके भी एकाग्र

'आज कुछ अकल्पनीय होनेवाला लगता है।'

सदा देवापिको अपना समकक्ष मित्र ही मानते हैं।

आजकी दृष्टिसे असाधारण, अकल्पनीय, दीर्घकाय,

'इक्ष्वाकुवंशीय शीघ्रका पुत्र यह मरु राजर्षि

यह कहानी लगभग ४२६९०० वर्ष आगेके सम्बन्धमें है और उस समयकी स्थितिका एक दृश्य उपस्थित करती है।

इसका प्रयोजन? अनेक बार लोग इस भ्रममें पडते हैं कि कल्कि-अवतार हो गया या निकट वर्षोंमें होनेवाला है। यह

प्रचार भी कुछ लोग करते हैं, किन्हीं भ्रान्तियोंके कारण अथवा कुछ निहित स्वार्थींके कारण। ऐसी दशामें यह कहानी इतना तो सूचित कर ही देती है कि शास्त्र-पुराणोंके अनुसार किल्क-अवतार जिस समय होगा, उस समयकी सामाजिक अवस्था

िभाग ९२

केवल कुछ वर्ष पहले—देवापिको वे अपने सहाध्यायी-

संख्या १२] कलियुगके	अन्तमें— २७
*****************************	***********************************
जगत्की ओर खींच रहा है।'	किंतु तुम दुखी मत हो। तुम दोनों तो उनके परम प्रिय
'आप जानते ही हैं कि हम दोनों स्रष्टाके एक	हो। वे स्वयं तुम्हारे भवन पधारेंगे!'
संकल्पविशेषके यन्त्र हैं।' राजर्षि मरु बोले—'स्वयं मेरी	'हमारे भवन?' मरुने चिकतभावसे पूछा। भला
भी आज यही अवस्था है। लगता है कि वह समय आ	उनकी तो कहीं झोपड़ी भी नहीं है।
गया, जब हम दोनोंको कार्यक्षेत्रमें जाना होगा। भगवान्	'हाँ, अब तुम गार्हस्थ्य स्वीकार करो! परशुरामजी
ब्रह्माने मेरे रूपमें सूर्यवंशका बीज यहाँ सुरक्षित किया था	वात्सल्य-गद्गद कह रहे थे—'मैं तुम्हारे पुत्र-पौत्रोंको
और आप चन्द्रवंशके मूल पुरुष बनेंगे निकटके सत्ययुगमें।	श्रुति-शास्त्र तथा शस्त्रकी भी शिक्षा दूँगा। ये जटाएँ
सम्भव है, अब इन बीजोंके विस्तारका काल आ चुका हो।'	आज विसर्जित करो और सूर्य-चन्द्र वंशोंके राज्य
'वत्स! रजस्का लेश भी यहाँ वर्जित है। सहसा दोनों	स्थापित करो इस पुण्यभूमिमें।'
ही राजर्षियोंके हृदयमें कोई अलक्ष्य वाणी गूँजी—'तुम्हारा	'वे निखिल गुरु! ' भगवान् परशुराम भाव–विह्वल
साधनकाल पूर्ण हो गया। सृष्टिकर्ताकी इच्छासे तुममें रजस्	हो रहे थे। वे पुन: कल्किका वर्णन करने लगे—'इस
अंकुरित होने लगा है। अत: अब तुम कर्मभूमिमें पधारो।'	जनको उन्होंने गौरव दिया। उन्हें कहाँ अध्ययन करना
'आदेश आ गया! वहाँ प्रत्यक्ष मिलन कोई महत्त्व	और सीखना रहता है। श्रुति उनका नि:श्वास है। मृत्यु
नहीं रखता। अदृश्य-दृश्यका भेद नगण्य है। मनका संकल्प	उनके संकल्पकी छाया; किंतु यहाँ वे अत्यन्त विनम्र
परस्पर विचारविनिमय, उपदेशग्रहण एवं आदेशप्राप्तिका	सेवापरायण बने रहे। उन्होंने समस्त शास्त्र, सांगवेद एवं
सुपरिचित माध्यम है उस सिद्ध स्थलीमें। दोनों राजर्षियोंने	समस्त अस्त्र-शस्त्रोंकी शिक्षा ग्रहण करनेका नाट्य
हाथ जोड़कर सिर झुकाया और एक साथ वहाँसे चले।	किया। गुरुका गौरव दिया इस जनको।'
× × ×	'वे परम प्रभु किधरः… ?'
'मनुष्य हैं ये?' राजर्षि मरु एवं देवापिके सम्मुख	'वे उग्रतेजा-रूपमें इस बार प्रकट हुए हैं।' परशुरामजीने
तो आजके मनुष्योंका आकार ही अत्यल्प है, कलिके	प्रश्नका तात्पर्य समझ लिया—'उन सहस्र सूर्यसमप्रभका
अन्तमें तो उन्हें तीनसे चार फीटतकके ही मनुष्य सर्वत्र	अंगवर्ण भी नेत्रोंको आकलन नहीं हो पाता। तुम जानते हो
मिलने थे। 'इनके मध्य रहना सम्भव होगा?'	कि इस भार्गवने भूमिको इक्कीस बार नि:क्षत्र किया और
'हम सीधे महेन्द्राचलपर चलेंगे!' थोड़ी देर	नौ शोणितहृद बनाये कुरुक्षेत्रमें। किंतु आज तुच्छ है वह
भगवती भागीरथीके तटपर हरद्वारमें ध्यानस्थ रहकर	परशु। भगवान् देवेन्द्रके द्वारा प्रदत्त उच्चै:श्रवाकी पीठपर
दोनों राजर्षि उठे—'इस आगामी चतुर्युगीके युगनिर्माता	वायुके वेगसे रौंद रहे हैं धराको। उनके करकी कराल
एवं शास्त्रनिर्देशक भगवान् परशुराम हैं। उनके पावन	करवालतुम दर्शन करोगे उनके ?'
चरणोंमें प्रणिपात करके हमें आदेशकी अपेक्षा करनी है।'	'देव! दयामय!' आर्तनाद कर उठे दोनों तपस्वी।
'धन्य हो गया सम्भल ग्राम! पवित्र हो गया	भगवान् परशुरामके अनुग्रहसे प्राप्त दिव्य-दृष्टिसे जो कुछ
विप्रश्रेष्ठ विष्णुयशका कुल। भगवान् कल्किरूपमें अवतीर्ण	उन्होंने देखा, असह्य था वह उनके लिये। प्रचण्ड वायुके
हुए।' भगवान् परशुरामने स्वयं गद्गद स्वरमें कहना	वेगसे दौड़ता हरितवर्ण श्यामकर्ण अश्व और उसकी पीठपर
प्रारम्भ किया! मरु और देवापिकी जैसे वे प्रतीक्षा ही कर	केश बिखरे, नेत्रोंमें प्रलयकी ज्वाला लिये, कोटि-कोटि
रहे थे। दोनोंने जब चरणोंमें मस्तक रखा, भार्गवने एक	भास्करके समान उग्रतेजा, अरुणवर्ण खड्गहस्त वे परम
साथ भुजाओंमें भर लिया उन्हें। स्वयं ही चिरपरिचितकी	पुरुष! पृथ्वी जैसे सम्पूर्ण रक्तके सागरमें डूब जायगी!
भाँति—जैसे पिता पुत्रोंसे मिले और अपने संवाद दे कहने	तिनकों-जैसे उड़ते-उछलते शव। अश्वके खुर रौंद रहे हैं
लगे—'अभी आज ही वे लोकमहेश्वर यहाँसे गये हैं।	राशि-राशि प्राणियोंको। समूह-के-समूह मनुष्य खड्गसे

भाग ९२ जीवन और वे भोग—जो जिसे स्वीकार कर ले कटते जा रहे हैं। क्रन्दन, शव, रक्त—कोई कुछ समझे, इससे पूर्व तो महामृत्यु बनी तलवार टुकड़े उड़ा जाती है। जबतकको, वह उसका उतने कालका पित। जैसे भी नगर-ग्राम, देश-द्वीप-प्रलयंकर-सा घूमता अश्व और हत्या-चोरीसे पेट भरे, वही जीविका। जो दूसरोंको दबाने, उसके पीछे उमड़ता रक्तका सागर! असह्य था यह दृश्य! छीनने, मारनेमें समर्थ हो, वह शासक। शुद्रप्राय, दस्युबहुल 'अभय वत्स!' आश्वासन दिया भगवान् परशुरामने। ये मानव! इनके भारसे धरा कलुषित हो गयी है!' युग बीत गये, उर्वी अन्न-फल उत्पन्न नहीं करती। 'इनमें हम जो सृजन करेंगे ?' मरुकी शंका मनुष्योंने कृत्रिम उर्वरकोंका इतना उपयोग किया कि धरा उचित ही थी। 'कुछ थोड़े संयमी, भावुक भी हैं।' बंजर बन गयी। समुद्री काई और सेवारको आहार भगवान्ने बताया—'दस्यु तो भगवान्की तलवारकी बनाया नरोंने; किंतु अपने ही आविष्कृत अद्भुत स्फोटकोंसे धाराने समाप्त किये ही समझो! उन सत्त्वमूर्ति प्रभुके उस सागरीय आहारको भी उन्होंने विषैला बना लिया। अंगरागकी पावन गन्ध अब शेष रहे लोगोंके चित्त गोधूम और शालि यदि कहीं अब मिलेंगे भी तो वे निर्मल कर देगी। अब उनकी संतान शुद्धशील होगी और श्यामकके समान अणुप्राय रह गये हैं। इस रक्त-कर्दमसे युगका प्रभाव उसे उचित दीर्घ आकार भी प्रदान करेगा!' धराको उर्वरा बनने दो। इस समय तो मानव आमिष, 'श्रीचरण जो आदेश करेंगे' मरुने विनम्रतापूर्वक फल, पत्र, छाल, काष्ठ, तृण आदिके आहारपर जीता कहा—'इन सेवकोंको उसका पालन करना ही है; है और वह भी विडम्बनाप्राय हैं। वृक्षोंमें शमी तथा वैसे किंतु—' ही कण्टक वृक्ष, फलोंमें झाड़ियोंके बदरीफल और 'जीवनकी सफलता श्रीहरिके चरणोंमें भक्ति है और वह तुम्हें प्राप्त है। भगवान् कल्कि स्वयं पधारेंगे आमिष पाता है मानव कृमियों तथा सरीसुपोंका। पश्-पक्षियोंका वंश, पता नहीं कब उसके उदरमें जा चुका।' तुम्हारे सदन' परशुरामजीने आश्वासन देते हुए आदेश 'यह हीनसत्त्व हीनाकार कदर्य मानवः…!' मरुने दिया—'जो मानव बचे भी हैं, वे शुद्रप्राय हैं। दीर्घकालसे खिन्न स्वरमें कहा, 'अपने मस्तिष्कपर बड़ा गर्व किया वर्णाश्रमका सर्वथा लोप हो चुका है। क्रियालोपसे द्विज इसने; किंतु अपने गर्वमें यह अपने ही आविष्कारोंका भी व्रात्य हो गये और फिर वर्ण संकर हो गया। अत: आखेट हो गया।' खिन्न स्वर ही था भगवान् परशुरामका इनकी संतित शूद्र ही होगी। तुम दोनों क्षत्रियवंशकी भी—'इसने ऐसे स्फोटक निर्मित किये कि युद्ध करके प्रतिष्ठा करो। तुम्हारी संतानोंमें आगे कुछ स्वयं वैश्यवर्ण उनके द्वारा इसीके सब आविष्कार, सब नगर समाप्त हो अपना लेंगे। ऋषि भी धराको धन्य करने कलापग्रामसे गये। वन्य प्राणी बन गया यह स्वयंके विनाशक आ रहे हैं। ब्राह्मणोंका कुल उनके द्वारा स्थापित हो कृत्योंसे। और दूसरा परिणाम भी क्या होगा। ईश्वरकी जायगा। मरुके द्वारा सूर्यवंशकी परम्परागत राजधानी सत्ता तथा धर्म, परलोक आदिको इसने पहले ही अयोध्या और चन्द्रवंशका पवित्र क्षेत्र प्रतिष्ठानपुर अब अस्वीकार कर दिया था। स्थूल भोगोंको ही महत्ता देवापिके द्वारा पूर्व प्रतिष्ठाको प्राप्त करे।' देनेका परिणाम जो विनाश होता है, अनिवार्य बना वह।' 'श्रीचरणोंकी प्रतीक्षा करेंगे हम!' दोनोंने साष्टांग 'और अब यह दीन पशुप्राय मानवः…।' देवापि प्रणिपात किया। 'प्रजापति स्वयं तुम्हारी सहधर्मिणियोंका विधान बोल नहीं सके। 'कीटप्राय कहो वत्स!' भार्गव बता रहे थे— करेंगे।' भगवान् परशुरामने आशीर्वाद देकर बताया-'इसकी परमायु आज बीस या तीस वर्ष है। सामान्यत: 'तुम्हारी संततिको शस्त्र एवं शास्त्रकी शिक्षा देने मुझे तो दस-पंद्रह वर्ष पूर्णायु हो गयी है। इन्द्रिय-भोगमात्र आना ही है!'

संख्या १२] संत-संस्मरण संत-संस्मरण (परमपूज्य देवाचार्य श्रीराजेन्द्रदासजी महाराजके गीताभवन, ऋषिकेशमें हुए प्रवचनसे साभार) 🗴 भगवान्का अर्चावतार (प्रतिमा) साक्षात भगवान् बोले—'संन्यासी वह जो सोने और मिट्टीमें फर्क न ही है। बात मुख्यरूपसे भावकी है। वृन्दावनके पं० समझे, राजा और सामान्यजनमें फर्क न करे। यह राजवंशीजी शालग्रामजीकी सेवा करते थे। छोटेसे गोल-समत्वभाव ही संन्यासीका मूल धर्म है।' 🗴 स्वामी सम्पूर्णानान्दजीको किसीने एक कटोरा मटोल शालग्रामजी एकबार हाथसे छिटक गये। पण्डितजीके मुखसे निकला—'अरे! ठाकुरजीको चोट लग जायगी।' चाँदीका और एक लकड़ीका भेंट किया। स्वामीजीने तबतक जाने कैसे बिना जमीनका स्पर्श किये शालग्रामजी चाँदीका कटोरा एक विद्यार्थीको बुलाकर उसे दे दिया। अपने सिंहासनमें जा विराजे। पण्डितजीकी जानमें जान विद्यार्थी संकोचमें पड गया और कहने लगा कि इस आयी। यह भावकी बात है। बहुमूल्य कटोरेका वह क्या उपयोग करेगा? स्वामीजी 🖈 मैहरमें रामसखा नामके एक सन्त थे, जो बोले—'ले लो, लकड़ी और चाँदी दोनों ही जमीनसे शालग्रामजीकी सेवा-पूजा करते थे। एक बार संयोगसे उत्पन्न होती है, क्या फर्क है? ठाकुरजीकी सेवामें उनके ठाकुरजी कुएँमें गिर गये। अब सन्त बड़े परेशान। उपयोग कर लेना। यह समत्व-बुद्धि बहुमूल्य है। शरीर कोई उपाय न देखकर ठाकुरजीको डाँटने लगे-प्रारब्धवश प्राप्त पदार्थींका उपभोग करता है और संत अरे शिकारी निर्दयी करिया अवधिकशोर। अनासक्त साक्षीभावसे उसे देखते रहते हैं। 🔹 पुज्य भक्तमालीजी महाराजको बरसानेकी एक क्यों तरसावत है जिया रामसखा चितचोर॥ लोग बताते हैं कि कुएँका जल वेगपूर्वक ऊपर गरीब बाईने कहा कि उसे भागवतकी कथा करानी है, आया और उसमेंसे एक गुलाबके फूलपर उनके शालग्रामजी किंतु उसके पास मात्र १५०० रुपये हैं। महाराजजीने विराजमान थे, जिसे लेकर वे सन्त खुशी-खुशी अपने कहा कि कथाका रुपयेसे क्या सम्बन्ध है, कथा हो मार्गपर चल दिये। यह अर्चावतारमें साक्षात् भगवद्भावका जायगी। निर्धारित समयपर कथा प्रारम्भ हुई, किंतु इस चमत्कार है। बीच जो रुपये उस बाईने कथाके निमित्त एक अनाजके 🗴 सन्तोंका समत्वभाव सदैव बना रहता है, यही पीपेमें रखे थे, उसे कोई निकाल ले गया। वह बडी उनकी खास पूँजी होती है। काशीके योगनिष्ठ सन्त चिन्तित। महाराजने उसे पुनः समझाया कि वह बिना स्वामी विशुद्धानन्दजी महाराजके समयकी बात है। एक विचलित हुए कथा-श्रवण करे। कुछलोग कहने लगे बार दरभंगा-नरेश उनके पास आकर सत्संगहेतु बैठे थे। कि भक्तमालीजीने अपना स्तर कितना घटा दिया है, स्वामीजीको भिक्षा करायी जा रही थी। सोनेके कटोरेमें हमसे कहते तो हम बढ़िया इन्तजाम करा देते। खीरका प्रसाद था, जिसे स्वामीजी ग्रहण कर रहे थे। महाराजजी निर्विकारभावसे कथा कहते रहे, जिसे राजा बोल उठे—'महाराज! संन्यासीका धर्म क्या है?' सुननेके लिये दूर-दूरसे विद्वान् साधु-सन्त पधारते थे। विशुद्धानन्दजी तत्काल कह उठे—'इस मूर्खको कान यह सन्तत्वकी मुख्य परीक्षा है-जिसे जन्म-कर्म-आश्रम-वर्ण आदिका अहंकार शेष न रह जाय, जो पकड़कर बाहर निकालो।' लोग सन्न रह गये। राजा आचाण्डालगोखुरम्को दण्डवत् प्रणाम कर सके, वही चुपचाप उठकर बाहर चला गया। जिज्ञासु था, दूसरे दिन फिर उपस्थित हुआ। पुन: वही प्रश्न। महाराज संत है।-प्रेम

तीर्थराज प्रयाग (डॉ० श्रीशिवशेखरजी मिश्र, एम० ए०, पी-एच० डी०, डी०लिट्०) हिन्दु तीर्थोंमें प्रयाग, काशी तथा गया अत्यन्त प्रकारके प्रसंग मिलते हैं। प्रयागको तीर्थराज इसलिये महत्त्वपूर्ण तीर्थ माने जाते हैं। ये तीनों तीर्थ अपनी कहा जाता है कि एक बार ब्रह्माने यज्ञ किया, जिसमें ख्यातिके कारण त्रिस्थलीके नामसे प्रसिद्ध हैं। नारायण उन्होंने प्रयागको मध्यवेदी, कुरुक्षेत्रको उत्तरवेदी तथा भट्ट (१५८० ई०)-ने वाराणसीमें त्रिस्थलीसेत् नामक गयाको पूर्ववेदी बनाया। पुस्तक लिखी, जिसमें उन्होंने प्रयाग, काशी तथा गया प्रयागमें गंगा, यमुना तथा सरस्वती—तीनों धाराएँ मिलकर दो धाराओंमें परिणत हो जाती हैं। इसीसे इसका तीनोंका विस्तृत वर्णन किया है। प्रयागके माहात्म्यका वर्णन ऋग्वेदके खिल सूक्त नाम त्रिवेणी तथा संगम पडा। मत्स्यपुराण (१०४।१२)-में ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है कि प्रयागतीर्थके दर्शनमात्र (१०।७५)-में इस प्रकार प्राप्त होता है— अथवा स्मरणमात्रसे मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाता है-सितासिते सरिते यत्र सङ्गर्थ दिवमुत्पतन्ति। दर्शनात्तस्य तीर्थस्य नामसंकीर्तनादि। तत्राप्लुतासो ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरा-मृत्तिकालम्भनाद्वापि नरः पापात् प्रमुच्यते॥ कूर्मपुराण (१।३४।२७) तथा अग्निपुराण

अमृतत्वं स्तजनासो त्रिस्थलीसेतुमें इसे आश्वलायन शाखाके अन्तर्गत (स्तवनादस्य तीर्थस्य—१११।६-७)-में इसी प्रकारके आयी हुई श्रुति बतलाया गया है, किंतु 'तीर्थीचन्तामणि'के प्रसंग प्राप्त होते हैं। कूर्मपुराण (१। ३४। २०)-में इसे अनुसार यह ऋग्वेदका ही सूक्त है। इस सूक्तके अनुसार प्रजापतिका क्षेत्र कहा गया है-जो व्यक्ति सित तथा असित अर्थात् गंगा और यमुनाके संगमपर स्नान करता है, वह स्वर्ग प्राप्त करता है और जो यहाँ अपना शरीर छोड़ता है, वह मोक्षको प्राप्त

करता है। मत्स्य (अध्याय १०३ से ११२), कूर्म (१।३४।२७), पद्म (१।४०।४९) तथा स्कन्दपुराण (काशीखण्ड ७।४५-६५) प्रयागको बहुत ही पवित्र

स्थान मानते हैं। महाभारतके अनुशासनपर्व (२५।३६— ३८)-में प्रयागमें स्नानद्वारा स्वर्गप्राप्तिका उल्लेख है— दशतीर्थसहस्राणि तिस्रः कोट्यस्तथा पराः॥ समागच्छन्ति माघ्यां तु प्रयागे भरतर्षभ। माघमासं प्रयागे तु नियतः संशितव्रतः॥ स्नात्वा तु भरतश्रेष्ठ निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात्।

इसी प्रकार महाभारतके अन्य स्थलोंपर भी 'प्रयाग'के माहात्म्यका वर्णन हुआ है। वाल्मीकीय रामायण (२। ५४।६)-में भी प्रयागका वर्णन प्राप्त होता है। प्रयागके लिये 'तीर्थराज' शब्दका प्रयोग अनेक स्थानोंपर हुआ है। तीर्थराजका अर्थ है 'तीर्थोंका राजा'।

मत्स्य (१०४।५; १११।१४) तथा नारदीयपुराण (उत्तर० ६३।१२७-१२८) भी इसे प्रजापतिका क्षेत्र मानते हैं। प्रयागमें विष्णु सदैव अपनी योगमूर्तिमें प्रतिष्ठित रहते हैं। (नारदीयपुराण ६५। १७) रुद्र भी यहाँ निवास

एतत् प्रजापतिक्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।

अत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥

करते हैं। जब उन्होंने अपने त्रिनेत्रसे संसारको भस्मीभूत किया था, उस समय प्रयाग भस्म नहीं हुआ था। इसी

कारण मत्स्यपुराण (१।१११।७, ९-१०)-में प्रयागको त्रिदेवोंका निवासस्थान बतलाया गया है-निवसन्त्येते ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। प्रयागे उत्तरेण प्रतिष्ठानाच्छद्मना ब्रह्म तिष्ठति। वेणीमाधवरूपी तु भगवांस्तत्र तिष्ठति॥

वटो

महेश्वरो

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः। मण्डलं नित्यं पापकर्मनिवारणात्॥

भूत्वा तिष्ठते परमेश्वरः।

पद्मपुराणमें 'स तीर्थराजो जयित प्रयागः' (६।२३।२७-Hinduism Discord Server https://dsc.pg/dharma ३५) ऐसा उल्लेख हैं। मत्स्य तथा स्कन्दपुराणमें इसी खण्ड कुर्म (१। ३४। २३, २६) तथा पद्मपुराण (आदि-रे MADE WITH LOVE BY Avinash/sha रेर पिट-१०)-में इससि समानता रखनवाल श्लाक मिलते हैं। मत्स्यपुराणमें ऐसा प्रसंग प्राप्त होता है कि जो करनेवाली है। तीर्थराजका महत्त्व आज भी कम नहीं व्यक्ति एक मासतक ब्रह्मचर्यपूर्वक प्रयागमें निवास करता हुआ है, वरं उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त होता जाता है। आज भी अनेक तीर्थयात्री तीर्थराजके दर्शन-हेतु तथा हुआ देवता एवं पितरोंका पूजन करता है, वह अपने मनोवांछित फलको प्राप्त करता है। (मत्स्यपुराण १०४।१८) त्रिवेणी-संगममें स्नान करनेहेत् प्रयागकी ओर बढते चले प्रयागका यह महत्त्व वास्तवमें उसे तीर्थराज-जाते हैं। इसीमें वे अपने जीवनको सार्थक समझते हैं।

भारतका कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, जो 'तीर्थराज

प्रयाग'के नामको सुनकर नतमस्तक नहीं हो जाता।

श्रीप्रयागाष्टकम्

श्रीप्रयागाष्टकम्-

पदपर प्रतिष्ठित करनेवाला है। इस तीर्थकी पवित्रता

मनुष्यको इहलौकिक तथा पारलौकिक सुख प्रदान

संख्या १२]

सुरमुनिदितिजेन्द्रैः सेव्यते योऽस्ततन्द्रैर्गुरुतरदुरितानां का कथा मानवानाम्।

स भ्वि सुकृतकर्तुर्वाञ्छितावाप्तिहेतुर्जयति विजितयागस्तीर्थराजः प्रयागः॥

श्रुतिः प्रमाणं स्मृतयः प्रमाणं पुराणमप्यत्र परं प्रमाणम् । यत्रास्ति गङ्गा यमुना प्रमाणं स तीर्थराजो जयति प्रयागः॥

न यत्र योगाचरणप्रतीक्षा न यत्र यज्ञेष्टिविशिष्टदीक्षा । न तारकज्ञानगुरोरपेक्षा स तीर्थराजो जयित प्रयागः॥

चिरं निवासं न समीक्षते यो ह्युदारचित्तः प्रददाति कामान् । यः किल्पतार्थांश्च ददाति पुंसां स तीर्थराजो जयित प्रयागः॥

तीर्थावली यस्य तु कण्ठभागे दानावली वल्गति पादमूले । व्रतावली दक्षिणबाहुमूले स तीर्थराजो जयित प्रयागः॥

यत्राप्लुतानां न यमो नियन्ता यत्र स्थितानां सुगतिप्रदाता । यत्राश्रितानाममृतप्रदाता स तीर्थराजो जयित प्रयागः॥

सितासिते यत्र तरङ्गचामरे नद्यौ विभाते मुनिभानुकन्यके । नीलातपत्रं वट एव साक्षात् स तीर्थराजो जयित प्रयागः॥

पुर्यः सप्त प्रसिद्धाः पतिवचनरतास्तीर्थराजस्य नार्यो नैकट्येनातिहृद्या प्रभवति च गुणैः काशते ब्रह्म यस्याम् ।

सेयं राज्ञी प्रधाना प्रियवचनकरी मुक्तिदाने नियुक्ता येन ब्रह्माण्डमध्ये स जयति सुतरां तीर्थराजः प्रयागः॥

आलस्य छोडकर देवता, मृनि, असुरराज आदि भी जिनकी सेवा निरन्तर ही करते हैं, तब फिर बडे-बडे

पापोंमें निरत रहनेवाले मनुष्योंकी तो बात ही क्या है? जो पृथ्वीमें सज्जनोंकी विघ्न बाधाओंको दूर करनेवाले

हैं और जिन्होंने समस्त यज्ञोंको जीत लिया है, ऐसे तीर्थराज प्रयाग की जय हो। जिनकी महत्ता के विषय में

वेद प्रमाण हैं, स्मृतियाँ प्रमाण हैं और पुराण तो सबसे बढ़कर प्रमाण हैं, उन तीर्थराज प्रयागकी जय हो। जहाँपर

योगाचरणकी प्रतीक्षा नहीं है और न विविध प्रकारके यज्ञों और इष्टियोंकी विशिष्ट दीक्षाकी अपेक्षा है। न तारक

मन्त्र तथा गुरुकी अपेक्षा है, ऐसे तीर्थराज प्रयाग की जय हो। बहुत आकर कोई निवास ही करे—इस बातकी जिन्हें परवाह नहीं, जो अत्यन्त उदार चित्तवाले हैं और मनुष्योंकी मनोकामनाओंको पूर्ण करते हैं तथा इच्छित

पदार्थोंको देते हैं, ऐसे तीर्थराज प्रयागकी जय हो। जिसके कण्ठभागमें तीर्थावली है, पादमूलमें दानावली शोभित

है, व्रतावली दक्षिण भुजामें स्थित है, ऐसे तीर्थराज प्रयागकी जय हो। जिस [-के पावन वारि]-में अवगाहन

करनेवालोंपर यमराजका नियन्त्रण नहीं रह जाता, जो अपने क्षेत्रमें निवासमात्रसे सुगति अर्थात् मोक्ष प्रदान कर देता है और जो आश्रय लेनेवालोंके लिये अमरत्वप्रदायक है। उस तीर्थराज प्रयागकी जय हो। श्रीगंगाजी और

यमुनाजीकी नीली और सफेद तरंगें ही जिनकी चॅंवर हैं तथा साक्षात् अक्षयवट ही जिनके नीले रंगका छत्र है,

ऐसे समस्त तीर्थोंके राजा प्रयाग महाराज की जय हो। अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवन्तिका और

द्वारका—ये जो सात प्रसिद्ध पुरियाँ हैं, वे तीर्थोंके महाराजा प्रयागकी आज्ञाकारिणी पटरानियाँ हैं। अत्यन्त ही

निकट होनेके कारण काशी [उन्हें] अत्यन्त ही प्रिय है, जिसमें कि ब्रह्म प्रकाशित होता है, वह इन सब रानियोंमें

प्रधान है और उस आज्ञाकारिणी रानीको मुक्ति देनेका काम तीर्थराजने सुपुर्द किया है अर्थात् वह अपने निकट मरनेवालोंको मुक्ति ही देती रहती है। ऐसे तीर्थराज प्रयागकी इस ब्रह्माण्डके बीचमें सदा जय हो।

काशीके सिद्धयोगी हरिहरबाबा संत-चरित— (आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री, एम०ए०, साहित्यरत्न) श्रावणमासकी सरसराती गंगाकी धारामें, भादोंकी संस्कृतका अध्ययनकर वे अयोध्या पहुँचे। अयोध्या उमडी भयानक बाढमें, सोलहसे लेकर बीस घंटेतक वैरागी वैष्णवोंकी पुरी मानी जाती है। हरिहरके मनमें जल-समाधि लगानेवाले, वैशाख-ज्येष्ठकी तपती बालुकामें विरक्तिकी भावना पटनाके संस्कृत परीक्षा-भवनमें ही बैठे रहकर ध्यान लगानेवाले और माघकी भयानक शीतमें जाग्रत् हो गयी थी। हरिहर अयोध्यामें एक संतके पास रहकर अध्ययन करने लगे। अध्ययन करते समय ही आकण्ठ जलमें मग्न रहकर भगवत्-चिन्तन करनेवाले

श्रीहरिहरबाबा (साधुओंके 'हरिहरभैया') आजसे प्राय: किसी वैरागीसे उनका धार्मिक वाद-विवाद हो गया। ७५ वर्ष पूर्वतक वाराणसीका गौरव बढ़ा रहे थे।

परमपावन काशीनगरी बाबा विश्वनाथ और गंगाजीकी स्थितिके अतिरिक्त अनेक संत-महात्माओं और योगियोंका गढ़ रहा है। भगवान् बुद्धने काशीसे सम्बद्ध सारनाथमें

रहकर धर्म-प्रचार किया था। जगद्गुरु शंकराचार्य-जैसे उद्भट दार्शनिक, विद्वान् एवं भाष्यकार आचार्य भी काशीपुरीकी शोभा बढ़ा चुके हैं। इसी प्रकार संत

हरिहरबाबा, जिन्हें महामना 'हरिहर भैया' कहा करते थे, कई दशकोंतक काशीपुरीमें निवासकर अपने योग और साधनाओंसे यह सिद्ध कर दिया कि मानव मोमका

पुतला नहीं, वह मनचाही सिद्धि भी प्राप्त कर सकता है और अपनी कोमल कायाको कठोरतम बना सकता है। उनकी साधनाकी बातें अलोक-साधारण हैं।

बाबा हरिहरानन्दका जन्म जाफरपुर गाँव (बिहार प्रान्तके सारन जनपद)-में हुआ था। बालक हरिहरकी शिक्षा-दीक्षा प्रारम्भ हुई और प्रारम्भमें ही वे संस्कृत

पढ़ने लगे। प्रथमा-परीक्षा देनेके समय ही उनके मनमें एक विचार उठा कि हम गर्ग, गौतम, कपिल, कणादकी संतान हैं; हमारे पूर्वज दूसरोंकी परीक्षा लेते रहे और अब हम विद्या-सम्बन्धी परीक्षामें दूसरोंके सामने परीक्षार्थी

बन गये! यह कितना परिवर्तन! ऐसी परीक्षासे लाभ क्या होगा? विद्या परीक्षा देनेके लिये नहीं है। विद्याका तो सतत अध्ययन और मनन होना चाहिये। इतना विचार

उन्होंने अपनी जन्मभूमिकी ओर न चलकर सीधे

वाराणसीपुरीकी यात्रा कर दी। कुछ दिन वाराणसीमें

उठते ही बालक हरिहरने तुरंत परीक्षा-भवन छोड दिया।

वैरागीको बालक हरिहरके तर्कोंसे चिढ़ हो गयी और बालक हरिहर भी वहाँके वातावरणसे ऊब गये। फिर वे वाराणसी वापस आ गये। बालक हरिहरका मन

ईश्वराराधनमें रम गया। वे भगवत्-चिन्तनमें लग गये; किंतु किसीसे गुरु-मन्त्र नहीं लिया!

एक दिन बालक हरिहरकी भेंट वाराणसीके तत्कालीन प्रख्यात संत श्रीवीतरागानन्दजीसे हो गयी। वीतरागानन्दजीके साथ हरिहर रहने लगे। तभीसे उन्हें लोग हरिहरानन्द कहने लगे। उनके साथ श्रीहरिहरानन्द लगभग बीस वर्षीतक काशीके दक्षिण 'छुछुआ'के पोखरपर और 'बनपुरवा'के

पास गंगाजीमें नावपर रहे। कुछ लोगोंको भ्रम था कि स्वामी वीतरागानन्दजीने स्वामी हरिहरानन्दजीको अपना शिष्य बना लिया है। किंतु दोनों संतोंसे जब जानकारी की गयी तो कुछ भी अवगत नहीं हो सका। इतना ही नहीं, दोनों संतोंसे उनके विषयमें कुछ भी जानकारी करनेकी

मिला। यह तो संतोंकी अपनी बात है। संतोंकी परम्परामें आत्मप्रकाशन अवांछनीय माना जाता है। तपोमय जीवन

जिज्ञासासे जब कभी किसीने पूछा तो कुछ भी उत्तर नहीं

[भाग ९२

शनै:-शनै: संत हरिहरानन्दका तपोमय जीवन

प्रारम्भ हुआ और उनका जीवन इतना साधना-सम्पन्न

हो गया कि लोग दाँतोंतले अँगुली दबाने लगे। यह चर्चा

आजसे पाँच दशकसे लेकर साढ़े तीन दशकके बीचकी है। इस तपस्वीके तपोमय जीवनको देखनेवाले अभी

हजारों व्यक्ति वाराणसीमें ही हैं। उनके चरण-स्पर्शके

बहाने लेखकने उनकी देहका भी स्पर्श किया है, जो

संख्या १२] काशीके सिद्धर	ग्रेगी हरिहरबाबा क्रम्मक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक
—————————————————————————————————————	आपको मिल गयी, किंतु उनके तपस्वी और त्यागमय
जलको जमा देनेवाले शीतको सहन कर चुकी थी और	जीवनकी कहानी भी विचित्र और रोचक है। जिन दिनों
बरसातकी गंगामें जो बीस-बीस घंटेतक शवके समान	स्वामी गंगाकी धारामें समाधिस्थ होकर छोटे मिर्जापुर गाँवसे
समाधिस्थ दशामें तैरती रहती थी।	वरुणा-गंगा-संगमकी ओर जाते थे, उस समय उन्हें बहता
गड्वाघाट (काशीपुरी)-के आगे छोटा मिर्जापुर	देखकर घाटपर स्नानार्थी यही समझते थे कि कोई मुर्दा
गाँव है, जो गंगाके किनारेपर है। श्रावण-भादोंकी उफनती	(शव) बहता जा रहा है। हाँ, कुछ परिचित जब बाबाको
गंगामें हरिहरबाबा मिर्जापुरके पास गंगामें बैठ जाते और	घाटपरसे ही सिर झुका हाथ जोड़कर अभिवादन करते तो
तैरकर बीच धारामें जाकर समाधि लगा लेते थे तथा शवके	दूसरे अपरिचित भी समझते थे कि कोई योगी योगासन
समान बहते हुए वरुणा-गंगा-संगमके आगे गंगाके पूर्वी	करके श्वास रोककर बहता जा रहा है। जाड़ेके दिनोंमें
तटपर एक किनारे लग जाते थे। वहाँसे पुन: दक्षिणकी	बाबाको जब किसी गाँवके पास गंगाके किनारे भयानक
ओर पैदल चल देते थे। गंगाके किनारे जहाँ रात्रि हो	शीतमें (रात्रिमें) कोई कम्बल, नयी रजाई या दुशाला ओढ़ा
जाती, वहीं रुक जाते और बरसातके भयानक वातावरणमें	देता तो बाबा उसे वहीं छोड़कर प्रात: आगे बढ़ जाते थे।
खुले आकाशमें पृथ्वीपर बैठ जाते, कुछ देर सो लेते। यदि	जिसे भी वह मिलता, वही उसे अपने काममें लाता था।
कोई भक्त दूध या फल लेकर वहाँ पहुँच जाता तो दूध या	भारतकी यह भी प्रथा है कि देवमूर्ति और गुरुकी
फल ग्रहण भी कर लेते; अन्यथा भगवान्के भरोसे रात्रि	पूजाके बाद दक्षिणा (द्रव्य) भी चढ़ायी जाती है। बाबाके
व्यतीत हो जाती थी। यह तथ्य भी जानकारीमें आया कि	पैरोंपर न जाने कितने भक्तोंने खनखनाते चाँदीके सिक्के,
बाबाके भक्तोंकी संख्या पर्याप्त हो चुकी थी। कोई-न-	रुपये-अठन्नी आदि चढ़ाये होंगे, जिन्हें बाबा यत्र-तत्र छोड़कर
कोई भक्त रात्रिके घनघोर अन्धकारमें लालटेन आदिके	आगे बढ़ जाते थे। वे जिसे मिलते वह धन्य हो जाता था।
प्रकाशमें हरिहरानन्दजीकी खोज अवश्य करता। वे फल	बाबाकी ठीक अवस्थाका परिज्ञान उनके शरीरत्यागके
या दूध ही ग्रहण करते थे।	समय भी नहीं हो सकता था। वास्तवमें योगियोंकी
जाड़ेकी भयानक शीतमें योगिराजजीका यही क्रम	अवस्थाका परिज्ञान शरीरके अवयवोंके द्वारा नहीं जाना
चलता था और वे गंगाजीमें पैठकर आकण्ठ जलमें खड़े	जा सकता। उनका जीवन दीर्घ होता है। हरिहर बाबा
रहकर निर्दिध्यासन किया करते थे। ज्येष्ठकी तपती	दीर्घजीवी थे।
दोपहरीमें वे बालुकामें बैठकर समाधि लगाते थे।	संतकी ख्याति
फलस्वरूप उनके शरीरका चमड़ा हाथीके चमड़े-जैसा	यह तो सर्वविदित है कि संत और योगिजन अपनी
बिल्कुल काला और मोटा हो गया था।	आत्म-प्रशंसा और ख्यातिसे दूर भागते हैं। यह सब होते
अवस्थाका कुछ प्रभाव जब उनपर पड़ने लगा और	हुए भी संत हरिहरानन्दके विषयमें वाराणसीके पास-पड़ोसके
वे अपनी कायाको जब कुछ अक्षम समझने लगे तो एक	समस्त जिलोंतक ही नहीं, अपितु गुजरात, महाराष्ट्र,
नौकापर (काशी-हिंदू-विश्वविद्यालयके पास गंगाके किनारे)	राजस्थान, बंगाल आदि प्रान्तोंके तीर्थयात्री बाबाका दर्शन
रहने लगे। नौकापर रहते हुए भी वे नित्य-क्रिया (मल-	करके अपने प्रदेशोंमें उनकी चर्चा किया करते थे। महाराज
मूत्रका त्याग)-के लिये गंगाके दूसरे भाग (पूर्व-तट)-	काशीनरेश, सोहावलनरेश, जोधपुरनरेश आदि इन पहुँचे
पर ही जाया करते थे। श्रावण-भादोंकी भयानक बाढ़में	हुए संतके दर्शनसे कई बार तृप्त हुए थे। भारतके अन्तिम
भी मल-मूत्रका त्याग उन्होंने काशीकी सीमामें नहीं किया।	वाइसराय लार्ड माउन्टबेटन भी इन योगिराजके दर्शनार्थ
योगिराजजीके तपोमय जीवनकी कुछ झलक तो	एकबार उनके पास असीसंगमपर पहुँचे थे।

स्वामीजीका शरीर जब अत्यन्त जीर्ण होने लगा तो कम बोलते थे। बोलनेमें राम-राम, शिव-शिव—यही

वे साधारण नौकासे हटकर एक बजड़ेमें रहने लगे, उच्चारण करते थे। एक बार उनके एक भक्तने साहस जिसका प्रबन्ध किसी दानवीर भक्तने करा दिया था। इन करके पूछा था-'स्वामीजी! आपको यह सिद्धि कैसे मिली?'

सिद्ध संतकी सेवा-शुश्रुषाके लिये उनके साथ कई अन्य स्वामीजीने कहा था-'चाहना (कामना) चमरिया है, ओके साधु रहते थे। भक्तजन स्वामीजीके लिये जो फलाहार— छोड़ देऽ तब सिद्धितऽ अपने-आप पासमें आ जायेऽ।' दूध आदि ले जाते थे, उसीमें सबका काम चल जाता एक बार योगीजीसे किसीने कहा—'महाराज!

था। काशीमें तीर्थयात्राहेतु आनेवाले यात्री गंगास्नानके काँग्रेस मठ और मन्दिरोंकी सम्पत्ति जब्त कर रही है।' बाद बाबा विश्वनाथके दर्शनके सिवा इन सिद्ध संतका संतका कथन था—'ठीक तऽ हव, साधुअनके सम्पत्ति न चाहीऽ।' जिज्ञासुने पुन: कहा—'महाराज! राजाओंकी

भी दर्शन करके अपनी यात्रा सफल मानते थे। भी सम्पत्ति छीनी जा रही है।' संतने उत्तर दिया-विश्वशान्तियज्ञमें बाबाका पुजन सन् ४१में 'विश्वशान्तियज्ञ'में सिद्धसंत पूज्य हरिहर

बाबाका षोडशोपचार पूजन किया गया था, जिसका अनुष्ठान मालवीयजी महाराजने स्वयं किया था और

यज्ञकी सम्पूर्ण सहायता दानवीर बिरलाजीने दी थी। संत हरिहरानन्द निमीलितचक्षु रहते थे। एक बारके

शीतलाप्रकोपसे उनकी एक आँख जाती रही। वे बहुत

प्रेरक-प्रसंग—

——— दिव्य मन्दिर –

प्राचीनकालमें पूजालाल नामके एक संत हो गये हैं। वे बड़े विद्वान् और शंकरके अनन्य भक्त थे, परंतु उन्हें

धनका बड़ा अभाव था। शिवजीका एक अत्युत्तम मन्दिर बनवानेकी उनके मनमें बड़ी लालसा थी। उनके इस

प्रस्तावको जो सुनता, वही हँस देता और कहता—'क्या तुम पागल तो नहीं हो गये हो, जो पैसे-पैसेके मुहताज

होकर इतने बड़े कामको उठाना चाहते हो ? जाओ, इस प्रकारकी बेसिर-पैरकी बातें सुननेके लिये हमारे पास

समय नहीं है।' लोग उन्हें वास्तवमें पागल समझते थे, परंतु संत अपने संकल्पमें अडिग थे, उनका उत्साह मन्द

नहीं हुआ। वे मनमें सोचने लगे—यदि पत्थरका मन्दिर बनवानेमें मेरी दरिद्रता बाधक होगी तो मैं अपने हृदयमें उनके लिये एक सोनेका मन्दिर बनवाऊँगा। उसी दिनसे उन्होंने अपने स्वर्णमय हृदयको प्रेमकी ज्वालासे द्रवीभूत

करके उसमें आगम-शास्त्रके अनुसार भगवानुका बड़ा सुन्दर मन्दिर बनाना शुरू किया। थोड़े ही दिनोंमें मन्दिर

तैयार हो गया और भक्तने अपने भगवान्को उसमें प्रतिष्ठित करनेके लिये उनका आवाहन किया। दैवयोगसे उसी

मुझे अपने अनन्यभक्त पूजालालके द्वारा निर्मित प्रेममन्दिरमें प्रवेश करना है।' अपने भक्तके संकल्पको सिद्ध करनेके लिये भगवान्ने पूजालालके हृदयमन्दिरमें पदार्पण किया। उनका सारा शरीर भगवान्की दिव्य ज्योतिसे

समय उस नगरके राजाने एक सुन्दर मन्दिर बनवाया और उसकी प्रतिष्ठाके लिये भी वही दिन नियत हुआ। भगवान्ने स्वप्नमें राजाको दर्शन दिया और कहा—'अपने मन्दिरकी प्रतिष्ठाको कुछ दिन स्थगित रखो, आज

जगमगा उठा। राजाने उनके घर जाकर उनकी वन्दना की। जिन लोगोंने उन्हें पागल कहकर उनकी अवज्ञा की थी,

'रजवौ, सब आपन कर्तव्य भूल गइलन।' सं० २००६ आषाढ़ शुक्ल पंचमी (प्रथम जुलाई

१९४९ ई०)-को संतने गंगाके पावन तटपर असीसंगमपर अपना इह लौकिक शरीर छोड दिया। पंचतत्त्व पंचतत्त्वमें

विलीन हो गये और बाबाकी अमर साधना सिद्धितक पहुँचकर

काशीकी गौरव-गाथामें एक स्वर्ण कड़ी जोड़ गयी।

िभाग ९२

वे सभी अपनी मूर्खतापर पश्चात्ताप करने लगे। इस प्रकार संत लोग अपने हृदयदेशमें वह दिव्य मन्दिर बनाते हैं, निमामें भारता कार के विष्टे त्या निमाज़रे हैं उद्देर पुरुष एक स्थाप के अपने भी अपने भी अपने के ले के प्राप्त क संख्या १२] संत-वचनामृत संत-वचनामृत (वृन्दावनके गोलोकवासी संत पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे) 🖈 एक व्यक्ति वृन्दावन जा रहा था, दूसरेने कुछ उत्तम जप हो जाता है। ऐसे भक्तको कुण्डलिनी जाग्रत् पैसे देकर कहा—'मेरे लिये एक तुलसीकी माला लेते करनेकी चिन्ता नहीं करनी पड़ती है। अपने पुरुषार्थके आना।' अभी माला आयी नहीं, नाम-जप हुआ नहीं, बलपर साधना करनेवाले योगी आगे बढ़कर फिर अटक केवल नाम-जप करनेका विचारमात्र किया था। इतनेमें जाते हैं। तब यदि वे शरणागत होकर नाम लेते हैं और ही यमराजने कहा—' अरे चित्रगुप्त! उस माला मँगानेवालेके प्रभु-कृपाकी प्रतीक्षा करते हैं तो प्रभु उनका हाथ खातेको खत्म कर दो।' चित्रगुप्तने कहा-'महाराज! पकड़कर उन्हें उठा लेते हैं। अपनेको असहाय मानकर उसे तो बहुत कर्मोंके फल भोगने हैं।' जो भगवान्का सहारा लेते हैं, उन्हें प्रभु अवश्य अपनाते यमराज बोले—'नहीं-नहीं! अब वह नाम-हैं। हरि: शरणं मम। 🖈 जीभरूपी देहलीपर नामरूपी मणिका दीपक जप के लिये उत्सुक है, उसके ऊपर कृपा हो गयी है। उस जीवके कर्म-बन्धन समाप्त हो गये।' यही नामाभास रखो तो भीतर और बाहर उजाला रहेगा। है। राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार। 🏠 'रा'का उच्चारण करनेसे पाप बाहर निकल तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर॥ जाते हैं, 'फिर 'म 'का उच्चारण करनेपर कपाट बन्द हो मणिरूपी दीपमें तेल-बत्ती नहीं चाहिये। पवन उसे जाता है; फिर मुखके बन्द होनेपर पाप प्रवेश नहीं कर बुझा नहीं सकेगा। नामरूपी दीपका हृदयमें भी प्रकाश पाते हैं। अत: 'हरे राम' यह महामन्त्र विधि-अविधि हो जायगा और हृदयका अन्धकार दूर हो जायगा। जैसे भी जपा जाय कलियुगमें विशेष फलप्रद है-🗘 केवल इच्छा करनेमात्रसे संसारका कोई काम नहीं बनेगा। उसके लिये तन, मन, धनसे श्रम करना तुलसी रा के कहत ही निकसत पाप पहार। पुनि आवन पावत नहीं देत मकार किवार॥ पड़ेगा। परंतु श्रीहरिकी भक्ति उत्कट इच्छामात्रसे प्राप्त 🗘 भगवान् कृपाके लिये सदा तत्पर रहते हैं। यदि हो जायगी। प्रभु हर जीवको सदा देखा करते हैं। मनकी उनकी कृपा न होती तो हम जिस प्रकार रह रहे हैं, ऐसे कामनाको पूर्ण करनेके लिये वाणी और शरीरसे कर्म बनने लग जायँगे। मनकी कामनाको पूर्ण करनेके लिये नहीं रह पाते। अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियोंकी परवाह न करके प्रभु-स्मरण-भजन करना है। इस संसारमें प्राणी परिश्रम करता है। मानसिक परिश्रम श्रेष्ठ है। सारी अनुकूलता मिलना कठिन है। चंचल मनसे भी उसीसे प्रभु प्रसन्न होते हैं। शारीरिक परिश्रमसे संसारी प्रभु-नाम-स्मरण लाभकारक है। नाम-स्मरणसे सब सन्तुष्ट होते हैं। संसार प्रभुका स्वरूप है, ऐसा मानकर काम बनेंगे। हम सुख चाहते हैं। शरणागतिमें सुख है। उपकार करना भक्ति ही है। अपना स्वार्थ त्यागकर जो शरणमें हैं, दास हैं, ऐसा ध्यान रहे। कुछ जीवोंके भलेके लिये किया जायगा, उससे भगवान् 🗘 सत्संग और भगवन्नामसे सब दोष दूर हो जाते सन्तुष्ट होंगे। भगवानुके सन्तुष्ट होनेपर सभी देवी-देवता हैं। सर्वश्रेष्ठ सुगम और सर्वोत्तम साधन है—नाम-जप, प्रसन्न हो जाते हैं। अत: भगवान्को प्रसन्न करनेके लिये सत्संग। इसमें सभी प्रणियोंका अधिकार है। जिह्वासे ही यह सब कुछ करना चाहिये। यही शास्त्रका रहस्य उच्चारण करते समय यदि कानसे उसे सुनें तो ध्यानसहित है। ['परमार्थके पत्र-पुष्प'से साभार]

गुरु अलौकिक तत्त्व अथवा शरीर? (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

शरीरमें गुरु-बृद्धि और गुरुमें शरीर-बृद्धि रखना प्राप्त हो, उसे बटोरा जाय, स्त्री-पुरुषका भेद न किया

भारी भूल है; क्योंकि गुरु-तत्त्व अनन्त ज्ञानका भण्डार जाय, ज्ञान न स्त्री है, न पुरुष।

है। गुरु, हरिहर और सत्यमें भेद नहीं है। गुरु-तत्त्व श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धके सातवें अध्यायमें

भगवान् श्रीकृष्णद्वारा अपने मित्र उद्धवजीको उपदेशके अनादि अनुत्पन्न तत्त्व है।

गुरुका शाब्दिक अर्थ व्यापक रूपमें लिया जाय तो

जिनसे हमें सद्ज्ञान मिले, वे सब गुरु हैं। सबसे पहले

गुरु तो माता-पिता ही होते हैं। आगे जीवनमें सभीसे

कुछ-न-कुछ अच्छी बातें हम सीखते हैं, जिनमें पुरुष

भी होते हैं और स्त्रियाँ भी होती हैं। वास्तवमें गुरु केवल वही नहीं होता है, जो कानमें

मन्त्र फूँककर दीक्षा दे, जिससे हमें गुरु-तत्त्वका प्रकाश मिला वह गुरु ही तो है।

जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको गीताका

ज्ञान दिया और वही ज्ञान आज भी मानव जातिको

गुरुकी भाँति ज्ञानका प्रकाश प्रदान कर रहा है और आगे भी करता रहेगा। गीताका ज्ञान गुरु ही तो है। सिख

सम्प्रदायने गुरुग्रन्थ साहिबको ही गुरु मान लिया है। इस दृष्टिसे विचार किया जाय तो स्पष्ट होगा कि गुरुमें

लिंग-भेद मानना उचित नहीं है। यदि यह कहा जाय कि स्त्री शब्दका तात्पर्य पत्नीसे

है, तब भी क्या कोई इस बातको अस्वीकार कर सकता

है कि वैवाहिक जीवनमें पत्नी पतिसे और पति पत्नीसे

जीवनसम्बन्धी अनेक अच्छी बातें सीखते हैं और ऐसा

ही वैवाहिक जीवन सफल और आनन्दपूर्ण होता है।

यदि इनमेंसे एकने भी अपनी बुद्धिपर ताला लगाया और

दूसरेकी बात सही होनेपर भी मात्र दम्भके कारण स्वीकार

न करनेकी जिद्द पकड ली, वहीं संघर्ष हो जाता है। यदि कोई पूछे कि तुलसीदासजीका गुरु कौन था,

तो मानना पडेगा कि उनकी पत्नी रत्नाजी ही तो उनकी गुरु थीं। बिल्वमंगल और नन्ददासजीके बारेमें भी कुछ

ऐसी ही किंवदन्ती है। किसी स्त्रीके ही शब्दोंने उनके

अन्तर्गत महाराज यदुको ब्रह्मवेत्ता दत्तात्रेयजीद्वारा सुनाये

गये उपाख्यानका वर्णन है। ब्रह्मवेत्ता दत्तात्रेयजीने कहा— 'राजन्! मैंने अपनी बुद्धिसे बहुत–से गुरुओंका आश्रय लिया है, उनसे शिक्षा ग्रहण करके मैं इस जगत्में

मुक्तभावसे स्वच्छन्द विचरता हूँ। तुम उन गुरुओंके नाम और उनसे ग्रहण की हुई शिक्षा सुनो! मेरे गुरुओंके नाम

हैं—पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कबूतर, अजगर, समुद्र, पतंग, भौंरा या मधुमक्खी, हाथी, शहद निकालनेवाला, हरिन, मछली, पिंगला वेश्या, कुरर

पक्षी, बालक, कुँआरी कन्या, बाण बनानेवाला, सर्प, मकडी और भुंगी कीट। राजन्! मैंने इन चौबीस

गुरुओंका आश्रय लिया है और इन्हींके आचरणसे इस लोकमें अपने लिये शिक्षा ग्रहण की है।'

यदि कोई यह जानना चाहे कि किस प्रकार उन्होंने इनसे कुछ सीखा, तो श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धके

जीवनकी दिशा बदल दी। सातवें अध्यायके श्लोक-संख्या ३६ से आगे पहे। अत: होना तो यह चाहिये कि जहाँसे भी सदुज्ञान [साधन-सूत्र, प्रस्तुति—श्रीहरीमोहनजी]

गोमाता भारतकी आत्मा हैं संख्या १२] गोमाता भारतकी आत्मा हैं (गोलोकवासी जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री 'श्री जी' महाराज) गौ समस्त प्राणियोंकी परम श्रेष्ठ शरण्य है, यह कीर्तनं श्रवणं दानं दर्शनं चापि पार्थिव। सम्पूर्ण विश्वकी माता है—'सर्वेषामेव भूतानां गावः गवां प्रशस्यते वीर सर्वपापहरं शिवम्॥ शरणमुत्तमम्', 'गावो विश्वस्य मातरः।'यह निखिला-निविष्टं गोकुलं यत्र श्वासं मुञ्चित निर्भयम्। गमनिगमप्रतिपाद्य सर्ववन्दनीय एवं अमितशक्तिप्रदायिनी विराजयति तं देशं पापं चास्यापकर्षति॥ दिव्यस्वरूपा है। कोटि-कोटि देवताओंकी दिव्य अधिष्ठान 'गोमाताको पुण्यमयी महिमाका कीर्तन, श्रवण, है। इसकी पूजा समस्त देवताओंकी पूजा है। इसका निरादर दर्शन एवं उसका दान सम्पूर्ण पापोंको दूर करता है। समस्त देवताओंका निरादर है। यह भारतीय संस्कृतिकी निर्भय होकर जिस भूमिपर गाय श्वास लेती है, वह परम शोभामयी है, वहाँसे पाप पलायित हो जाता है।'

समस्त देवताओंका निरादर है। यह भारतीय संस्कृतिकी प्रतीकस्वरूपा है। परम दिव्यामृतको देनेवाली सकलहित-कारिणी तथा सम्पूर्ण विश्वका पोषण करनेवाली है। इसकी आराधनासे सकल देववृन्द एवं विश्वनियन्ता भगवान् श्रीसर्वेश्वर अतिशय प्रसन्न होते हैं। तभी तो वे व्रजराजिकशोर 'गोपाल' एवं 'गोविन्द' बनकर व्रजके वनोपवनोंमें, गिरिराजके मनोरम वनोपवनोंमें तथा कालिन्दीके कमनीय कूलोंपर नंगे चरणों असंख्य गोसमूहके पृष्ठभागमें अनुगमन करते हुए उनकी सेवा-निरत रहा करते थे। अग्निपुराण (२९२।१८)-में कहा गया है—
गावः पवित्रं परमं गावो माङ्गल्यमृत्तमम्।

चरणों असंख्य गोसमूहके पृष्ठभागमें अनुगमन करते हुए उनकी सेवा-निरत रहा करते थे। अग्निपुराण (२९२।१८)-में कहा गया है—

गावः पवित्रं परमं गावो माङ्गल्यमुक्तमम्।
गावः स्वर्गस्य सोपानं गावो धन्याः सनातनाः॥
'गायें परम पवित्र, परम मंगलमयी, स्वर्गकी सोपान, सनातन एवं धन्यस्वरूपा हैं।'
गवां हि तीथें वसतीह गङ्गा पुष्टिस्तथा तद्रजिस प्रवृद्धा।
लक्ष्मीः करीषे प्रणतौ च धर्मस्तासां प्रणामं सततं च कुर्यात्॥
(विष्णुधर्मो०२।४२।५८)
'गौ-रूपी तीर्थमें गंगा आदि सभी निदयों तथा तीर्थोंका आवास है, उसकी परम पावन धूलिमें पुष्टि विद्यमान है, उसके गोमयमें साक्षात् लक्ष्मी है तथा इन्हें प्रणाम करनेमें धर्म सम्पन्न हो जाता है। अतः गोमाता सदा-सर्वदा प्रणाम करनेयोग्य है।'

शास्त्रोंमें स्थल-स्थलपर गौकी गरिमा, महिमा एवं

सर्वोपादेयता निर्दिष्ट की गयी है। गौका दर्शन, स्पर्श और

अर्चन परम पुण्यमय है। गायके स्पर्शमात्रसे आयु बढ़ती

है। भीष्म पितामहने युधिष्ठिरको महाभारतके अनुशासन-

पर्व (५१।२७, ३२)-में इस प्रकार उपदेश किया है—

भगवान् मनुने गोदानका फल बताते हुए कहा है— 'अनडुहः श्रियं पुष्टां गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम्।' अर्थात् 'बैलको देनेवाला अतुल सम्पत्ति तथा गायको देनेवाला दिव्यातिदिव्य सूर्यलोकको प्राप्त करता है।' जिस भारतके धर्म, संस्कृति और विविध शास्त्र तथा सर्वद्रष्टा तत्त्वज्ञ ऋषि-मृनियों एवं आप्त महापुरुषोंके अनेक उपदेश गोमाताकी दिव्य महिमासे ओत-प्रोत हैं, जिस भारतकी पृण्य वसुन्धरा सदा-सर्वदासे गौके विमल यशसे समग्र विश्वमें अपनी दिव्य धवलिमा आलोकित करती आयी है, जिस भारतमें अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक, सर्वनियन्ता श्रीसर्वेश्वर भी 'गोपाल' बनकर गोमहिमाकी श्रेष्ठता, सर्वमूर्धन्यता बतलाते हैं, उस पवित्र भारतकी दिव्य अविन गोदुग्ध, गोदिध, गोघृतके स्थानपर गोमाताके रक्तसे रंजित हो, यह बड़े दुर्भाग्यकी बात है! धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक आदि सभी दृष्टियोंसे गोमाता परमोपकारिणी हैं, इसका विनाश राष्ट्रका विनाश है। वह भारतकी अतुलनीय अमूल्य

सम्पत्ति है, अतः इसकी रक्षा राष्ट्रकी रक्षा है।

गवां सेवा तु कर्तव्या गृहस्थैः पुण्यलिप्सुभिः।

गवां सेवापरो यस्तु तस्य श्रीर्वर्धतेऽचिरात्॥

गायोंकी सेवा अवश्य करनी चाहिये; क्योंकि जो नित्य

श्रद्धा-भक्तिसे गायोंकी प्रयत्नपूर्वक सेवा करता है,

उसकी सम्पत्ति शीघ्र ही वृद्धिको प्राप्त होती है और

नित्य वर्धमान रहती है।

अर्थात् प्रत्येक पुण्यकी इच्छा रखनेवाले सद्गृहस्थको

साधनोपयोगी पत्र (१) निंदक नियरे राखिये आँगन कुटी छवाय।

निन्दासे डर नहीं, निन्दनीय आचरणसे डर है सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपने जो कुछ लिखा है, उससे पता लगता है आप सर्वथा निर्दोष ऐसा भाव होगा तो भगवान् आपपर विशेष प्रसन्न होकर

हैं और वे लोग अकारण ही आपपर कलंक लगाकर आपका जी दुखा रहे हैं। संसारमें ऐसा प्राय: हुआ करता

है। झुठा कलंक तो लोगोंने श्रीकृष्णपर भी लगा दिया था। जिनको परचर्चा और परनिन्दामें मजा आता है, वे लोग स्वभावत: ही ऐसा किया करते हैं। कुछ लोग बहुत

बुरी नीयतसे जान-बूझकर ऐसा करते हैं। पर जिसकी निन्दा की जाती है, वह यदि निर्दोष है, भगवान्के सामने सच्चा है तो परिणाममें उसका कदापि अहित नहीं हो सकता। आपको यह समझना चाहिये कि भगवान्

आपको कलंक-तापसे तपाकर और भी उज्ज्वल बनाना

चाहते हैं। आपके जीवनको सर्वथा निर्मल बनानेके लिये ही ऐसा हो रहा है। आपको इससे डरना नहीं चाहिये, न उद्विग्न ही होना चाहिये। श्रीभगवान् सर्वान्तर्यामी, सर्वतोचक्षु और सदा सर्वत्र वर्तमान हैं, उनसे हमारे मनके

भीतरकी भी कोई बात छिपी नहीं है, यदि हम उन भगवान्के सामने सच्चे हैं तो फिर हमें किस बातका भय है। साथ ही यह भी याद रखना चाहिये कि कर्मका फल

देनेवाले भी भगवान् ही हैं; हमारे कर्मके अनुरूप ही हमें फल मिलेगा। दूसरोंके बकनेसे कुछ भी नहीं हो सकता।

असलमें इस प्रकारकी झूठी निन्दामें जो भगवान्की कृपाका अनुभव करते हुए निर्विकार और प्रसन्न रहते हैं, वे ही विश्वासी साधु या भक्त हैं। जो लोग आपकी

झूठी निन्दा करते हैं, वे बेचारे तो दयाके पात्र हैं; क्योंकि आपपर मिथ्या कलंक लगाकर अपने ही हाथों अपनी

ही हानि कर रहे हैं। इस कुकर्मका फल उन्हें भोगना पड़ेगा। पर आपको तो उनका उपकार मानना चाहिये। आपके लिये तो वे आपका चरित्र निर्मल बनानेमें

सहायता कर रहे हैं। उनके प्रति जरा भी द्वेष नहीं करना

बिनु पानी बिन साबुना निर्मल करै सुभाय॥ संतोंकी यह वाणी याद रखनेयोग्य है। आपका

> आपकी सहायता करेंगे। हाँ, आप अपने चरित्रको सदा सावधानीसे देखते रहिये। उसमें कहीं जरा-सा भी दोष दिखायी दे तो उसे दूर करनेकी चेष्टा कीजिये। किसीके

द्वारा की जानेवाली मिथ्या निन्दासे आपका कुछ भी नहीं बिगडेगा, परंतु यदि आपके अन्दर सचमुच दोष होगा,

निन्दाके योग्य आचरण या भाव होगा तो जगत्के द्वारा प्रशंसा प्राप्त करके भी आप उसके बुरे परिणामसे— अनिष्टसे बच नहीं पायेंगे। अपने मनकी कालिमा ही

सच्चा कलंक है, दूसरोंके द्वारा अकारण लगाया जानेवाला कलंक नहीं। शेष प्रभुकुपा।

(२) आध्यात्मिक शक्ति ही जगत्को विनाशसे बचा सकती है सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला।

जहाँ जीवनका लक्ष्य केवल कामोपभोग होता है, वहाँ मनुष्यमें धीरे-धीरे समस्त आसुरी सम्पत्तियाँ आ जाती

हैं। गीताके सोलहवें अध्यायमें आसुरी सम्पत्तिका वर्णन है। आजका मनुष्य कामोपभोगपरायण है। उसका लक्ष्य भौतिक उन्नति—प्रचुर परिमाणमें जागतिक पदार्थोंकी प्राप्ति है। व्यक्ति और राष्ट्र सभी इसी होड़में लगे हैं।

इसीका परिणाम संघर्ष, संहार, अशान्ति तथा दु:ख है

[भाग ९२

और भौतिक उन्नतिकी दौड़में लगे हुए जगत्के लिये यह अनिवार्य है। भगवान्की दिव्यतासे रहित भौतिक उन्नति मानवको रसातलमें ले जाती है; वह उन्नति, प्रगति और

विकासके मोहक नामोंपर पतनकी अत्यन्त गहरी गर्तमें गिर जाता है, जिससे उठनेका उसे जन्म-जन्मान्तरतक भी अवकाश नहीं मिलता, वरं उत्तरोत्तर उसे नीची-से-

नीची गतिमें जाना पडता है। श्रीभगवान्ने ऐसे ही चाहित्रduism Discord Server https://dsc.gg/dharmaiih भूकि है । LOVE BY Avinash/Sha

साधनोपयोगी पत्र संख्या १२] देखकर फूला नहीं समाता और वह अपनी उन्नतिपर तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्। गर्वोन्मत्त होकर शीघ्र ही प्रचण्डरूपसे भडक उठनेवाले क्षिपाम्यजस्त्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥ आसुरीं योनिमापन्ना मृढा जन्मनि जन्मनि। सर्वसंहारक विस्फोटकी ढेरीपर खडा हर्षसे नाच रहा है! वह उन्नतिकी माप भौतिक पदार्थींकी प्रचुरता और मामप्राप्येव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥ कर्मकी महान् विस्तृतिसे करता है। उसके हृदयमें जो (गीता १६।१९-२०) 'उन द्वेष करनेवाले, अशुभ कर्मोंमें लगे हुए, काम-क्रोध, लोभ-मोह, द्वेष-दम्भ, मद-अहंकार, ईर्ष्या-क्ररहृदय नीच नरोंको मैं (भगवान्) संसारमें बार-बार असूया, हिंसा-प्रतिहिंसा और इनके फलस्वरूप चिन्ता-आसुरी योनियोंमें ही गिराता हूँ। अर्जुन! वे मूढ़ लोग शोक, दु:ख-विषाद, अस्थिरता-अशान्तिकी भीषण आग (आसुरी सम्पत्तिका अर्जनकर काम-क्रोधादिकी परायणतासे जल रही है, उसकी ओर वह नहीं देखता। यही विपरीत केवल सांसारिक भोगोंकी प्राप्ति और भोगमें लगे रहकर बुद्धिका मोह है-यही तामसी बुद्धिका स्वरूप है-अपने ही हाथों अपना पतन करनेवाले मूर्ख) एक अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता। जन्मके बाद दूसरे जन्ममें - बार बार आसुरी योनिको सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥ भगवान् कहते हैं—' अर्जुन! तमोगुणसे ढकी हुई जो प्राप्त होते हैं। मुझ (भगवान्)-को न पाकर (मनुष्य-शरीरकी सच्ची सफलता भगवत्-प्राप्तिसे वंचित रहकर) बुद्धि अधर्मको धर्म मानती है तथा अन्य भी सब अर्थोंको आसुरी-योनिसे भी अति नीच गतिको प्राप्त करते हैं।' विपरीत (अवनितको उन्नित, विनाशको विकास, हानिको ऐसे लोगोंका मानव-जीवन निष्फल होकर परलोक लाभ, अकर्तव्यको कर्तव्य, अशुभको शुभ आदि) ही मानती तो बिगड़ता ही है, यहाँ भी उन्हें क्षणभरके लिये सुख-है, वह बुद्धि तामसी है!' और तामस मनुष्य अधोगतिको शान्तिकी प्राप्ति नहीं होती। वरं जो लोग उनके सम्पर्कमें प्राप्त होते हैं—'अधो गच्छन्ति तामसाः।' आते हैं, उनकी भी सुख-शान्ति नष्ट होने लगती है। यह सब देखकर यही कहना पडता है कि आजका आजका मानव-जगत् इसी आसुर-भावको प्राप्त है। मानव-जगत् इस समय अवनितके कालमें है और जबतक वह इससे नहीं छूट जाता, जबतक भोगोंकी क्रमशः अवनतिकी ओर ही जा रहा है; क्योंकि बुराई जगह भगवान्को जीवनका लक्ष्य नहीं बना लेता, पहले मनमें आती है, पीछे वह क्रियारूपमें प्रकट होती जबतक भौतिक पदार्थोंसे मन हटाकर आध्यात्मिकताकी है। आजकी मानव-मनकी यह काम-क्रोधादिपरायणता ओर प्रवृत्त नहीं हो जाता, तबतक सुख-शान्तिकी आशा ही कल विनाशका भीषण स्वरूप धारण करके क्रियारूपमें करना आकाश-कुसुमके समान व्यर्थ ही है। मानवका प्रकट होनेवाली है। यदि इस स्थितिमें परिवर्तन नहीं मन जिस कालमें भगवान्से हट जाता है; और भौतिक हुआ, मानव कामोपभोगके लक्ष्यको छोडकर आध्यात्मिकताकी ओर—भगवान्की ओर न मुड़ा तो शक्ति-सामर्थ्य-ऐश्वर्य-वैभव-प्रभाव-प्रख्याति, विज्ञान-ज्ञान आदिकी वृद्धि हो जाती है; तब उसकी दिव्य तीसरे राक्षसी महायुद्धके रूपमें या अन्य किसी रूपमें आध्यात्मिक शक्तियाँ सुप्त-सी हो जाती हैं-उनका उसका पतन या विनाश अवश्यम्भावी है। विनाशके विकास और प्रकाश रुक जाता है। वह काल मनुष्यके मुखपर बैठे हुए जगत्को यदि कोई शक्ति बचा सकती लिये घोर पतनका समझा जाता है। अवश्य ही उसकी है तो वह केवल आध्यात्मिक शक्ति ही है। मानव-विपरीत बुद्धि इस पतनको उत्थान, इस अवनतिको जातिके शुभचिन्तकोंको चाहिये कि वे स्वयं सावधान हो उन्नति और इस विनाशको विकास बतलाती है और मृढ जायँ और जहाँतक उनकी आवज पहुँचती हो, नम्रता, विनय परंतु दृढ्ताके साथ इस आवाजको पहुँचानेका मानव इसपर गर्व भी करता है। आज यही प्रत्यक्ष हो रहा है। आजका विकासवादी मानव भौतिक उन्नतिको प्रयत्न करें। शेष प्रभुकृपा

कल्याण

वतोत्सव-पर्व

राज २००५, राजा १९०७, रा १ २०१९, राज जाराजन, निराहार प्रदेश, नाज जुननायदा						
तिथि	वार	नक्षत्र	दिनां	क	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि	
प्रतिपदादिनमें ८। ५६ बजेतक	मंगल	आश्लेषा रात्रिमें २।२९ बजेतक	२२ जन	वरी	सिंहराशि रात्रिमें २।२९ बजेसे।	
तृतीया रात्रिमें ४।१५ बजेतक	बुध	मघा 🗤 १२। ५० बजेतक	२३	,,	भद्रा सायं ५। २५ बजेसे रात्रिमें ४। १५ बजेतक, मूल रात्रिमें १२। ५० बजेत	
चतुर्थी " २।० बजेतक	गुरु	पू० फा० " ११।१५ बजेतक	२४	,,	कन्याराशि रात्रिमें ४।५४ बजेसे, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोत	
					रात्रिमें ९।१० बजे, श्रवणका सूर्य रात्रिमें ९।८ बजे।	
पंचमी " ११।५६ बजेतक	शुक्र	उ० फा० ,, ९।५१ बजेतक	२५	,,	× × ×	
षष्ठी '' १०।७ बजेतक	शनि	हस्त 🗸 ८। ४० बजेतक	२६	,,	भद्रा रात्रिमें १०।७ बजेसे, गणतंत्र-दिवस।	
सप्तमी 🗤 ८। ३९ बजेतक	रवि	चित्रा <table-cell-rows> ७। ५२ बजेतक</table-cell-rows>	२७	,,	भद्रा दिनमें ९।२३ बजेतक, तुलाराशि दिनमें ८।१६ बजेसे।	
अष्टमी 😗 ७।३३ बजेतक	सोम	स्वाती <table-cell-rows> ७। २३ बजेतक</table-cell-rows>	२८	,,	× × ×	
नवमी " ६।५६ बजेतक	मंगल	विशाखा <table-cell-rows> ७।२२ बजेतक</table-cell-rows>	२९	,,	वृश्चिकराशि दिनमें १।२२ बजेसे।	
दशमी 😗 ६। ४६ बजेतक	बुध	अनुराधा 🤫 ७।४९ बजेतक	३०	,,	भद्रा प्रात: ६।५१ बजेसे रात्रिमें ६।४६ बजेतक, मूल रात्रिमें ७।४	
					बजेसे।	

२ ,, भद्रा रात्रिमें ९। २५ बजेसे, शनिप्रदोषव्रत। ,, भद्रा दिनमें १०।१९ बजेतक, **मकरराशि** प्रात: ६।४५ बजेसे। चतुर्दशी '' ११।१२ बजेतक रिवि उ०षा० 🗤 २ । २७ बजेतक सोमवती-मौनी अमावस्या। अमावस्या " १। १३ बजेतक | सोम | श्रवण ग ४। ५८ बजेतक

सं० २०७५, शक १९४०, सन् २०१९, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, माघ शुक्लपक्ष

प्रतिपदा रात्रिमें ३।२४ बजेतक	मंगल	धनिष्ठा अहोरात्र	५ फर	वरी	कुम्भराशि रात्रिमें ६।१७ बजेसे, पंचकारम्भ रात्रिमें ६।१७ बजे।
द्वितीया रात्रिशेष ५। २९ बजेतक	बुध	धनिष्ठा दिनमें ७। ३५ बजेतक	ξ	,,	धनिष्ठाका सूर्य रात्रिमें ११।२० बजे।
तृतीया अहोरात्र	गुरु	शतभिषा 🕠 १०। ७ बजेतक	૭	,,	मीनराशि रात्रिशेष ५।५१ बजेसे।
तृतीया प्रात: ७। २२ बजेतक	शुक्र	पू०भा० ग १२।२६ बजेतक	۷	,,	भद्रा रात्रिमें ८।९ बजेसे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।
चतुर्थी दिनमें ८।५५ बजेतक	शनि	उ०भा० ११२। २३ बजेतक	९	,,	भद्रा दिनमें ८।५५ बजेतक, मूल दिनमें २।२३ बजेसे।
पंचमी " १०।० बजेतक	रवि	रेवती ,, ३।५४ बजेतक	१०	,,	मेषराशि दिनमें ३।५४ बजेसे, पंचक समाप्त दिनमें ३।५४ बजे, वसन्तपंचमी।

१२ "

१३ "

88 "

१५ "

१६ "

१७ "

१८ "

१९ "

११ 😗 मूल सायं ४।५७ बजेतक।

भद्रा दिनमें १०। ४१ बजेसे रात्रिमें १०। २८ बजेतक, रथसप्तमी,

भद्रा रात्रिमें ७। १० बजेसे रात्रिशेष ६। २० बजेतक, जयाएकादशीव्रत (स्मार्त)।

भद्रा दिनमें १०। ३८ बजेतक, सिंहराशि दिनमें १०। ३३ बजेसे,

भद्रा रात्रिमें ११।५० बजेसे, मूल दिनमें १२।१३ बजेसे।

अचलासप्तमी, वृषराशि रात्रिमें ११। २८ बजेसे।

कुम्भसंक्रान्ति दिनमें १२।५६ बजे।

कर्कराशि दिनमें ८।७ बजेसे, प्रदोषव्रत।

मिथुनराशि रात्रिमें ४।४१ बजेसे।

एकादशीव्रत (वैष्णव)।

माघीपूर्णिमा ।

तिथि नक्षत्र दिनांक मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

एकादशी " ७।९ बजेतक गुरु ज्येष्ठा " ८। ४८ बजेतक शुक्र मूल 🕠 १०। १८ बजेतक १ फरवरी मूल रात्रिमें १०।१८ बजेतक। द्वादशी 😗 ८।५ बजेतक त्रयोदशी 😗 ९।२५ बजेतक |शनि |पू०षा० // १२।१० बजेतक

कृत्तिका 🗤 ५। ३० बजेतक

रोहिणी 🗤 ५।४ बजेतक

मृगशिरा 🗤 ४। १७ बजेतक

आर्द्रा दिनमें ३।९ बजेतक

पुनर्वसु ,, १। ४६ बजेतक

पुष्य 🗤 १२।१३ बजेतक

आश्लेषा 🗤 १०।३३ बजेतक

षष्ठी '' १०। ३७ बजेतक सोम अश्विनी सायं ४। ५७ बजेतक

सप्तमी 🗤 १०। ४१ बजेतक | मंगल | भरणी 🕠 ५। २७ बजेतक

बुध

गुरु

शुक्र

शनि

रवि

सोम

मंगल

अष्टमी '' १०।१५ बजेतक

नवमी '' ९।२० बजेतक

दशमी प्रातः ८।० बजेतक

द्वादशी रात्रिमें ४।२२ बजेतक

त्रयोदशी रात्रिमें २ ।११ बजेतक

चतुर्दशी '' ११।५० बजेतक

पूर्णिमा " ९ । २६ बजेतक

मं० २०७५, शक १९४०, सन २०१९, सर्य उत्तरायण, शिशिर-ऋत, माघ कष्णापक्ष

धनुराशि रात्रिमें ८।४८ बजेसे, षटतिला एकादशीव्रत (सबका)

व्रतोत्सव-पर्व

भद्रा दिनमें २। ४६ बजेतक, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीवृत, चन्द्रोदय

भद्रा दिनमें १०। २६ बजेसे रात्रिमें १०। ७ बजेतक, वृश्चिकराशि

भद्रा रात्रिमें १०। ३४ बजेसे, मूल रात्रिशेष ५। ३८ बजेतक।

मकरराशि दिनमें १।५९ बजेसे, विजयाएकादशीवृत (सबका)।

भद्रा सायं ४। १० बजेसे रात्रिशेष ५। १५ बजेतक, कुम्भराशि रात्रिमें

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

मेषराशि रात्रिमें ११।२१ बजेसे, पंचक समाप्त रात्रिमें ११।२१ बजे।

मूल समाप्त रात्रिमें १२। ३० बजे, भद्रा दिनमें १। ० बजेसे

भद्रा दिनमें ११।८ बजेतक, मिथ्नराशि दिनमें १२।३६ बजेसे, होलाष्टकारम्भ।

मीनसंक्रान्ति दिनमें ८।१० बजे, खरमासारम्भ, वसन्तऋतु प्रारम्भ।

भद्रा सायं ४। २८ बजेतक, **आमलकी एकादशीव्रत**ं(सबका),

सिंहराशि रात्रिमें ६। ४१ बजेसे, सोमप्रदोषव्रत, उ०भा० का सूर्य

भद्रा दिनमें ९। १९ बजेसे रात्रिमें ८। १२ बजेतक, कन्याराशि

रात्रिमें ९ ।० बजेसे, व्रत-पूर्णिमा, भद्रा के बाद होलिका दहन।

भद्रा रात्रिशेष ५।३६ बजेसे, **कर्कराशि** सायं ४।१० बजेसे।

१।२६ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें १।२६ बजे, **महाशिवरात्रिव्रत।**

वतोत्सव-पर्व ग्रण, शिशिर-ऋतु, फाल्गुन कृष्णपक्ष

२२ ,,

२३ ,,

28 "

२५ ,,

१ मार्च

२ "

3 ,,

8 ,,

4 ,,

,,

ξ

दिनांक

७ मार्च

20 11

22 "

१२ " १३ "

१४ "

१५ "

१६ "

१७ "

१८ "

१९ "

२० "

ረ ,, रात्रिमें ८।५६ बजे। तुलाराशि सायं ४।९ बजेसे।

रात्रिमें ९।४ बजेसे मूल रात्रिमें ३। २३ बजेसे।

प्रदोषव्रत।

अमावस्या।

धनुराशि रात्रिमें ४। १५ बजेसे।

भद्रा दिनमें ११।१ बजेतक।

पु०भा० का सूर्य दिनमें ८। ३० बजे।

मीनराशि रात्रिमें १।५ बजेसे।

मुल रात्रिमें ९।४४ बजेसे।

रात्रिमें १।१७ बजेतक।

वृषराशि प्रातः ७।१० बजेसे।

भद्रा रात्रिमें ११। ४९ बजेसे।

मुल रात्रिमें ८। १९ बजेसे।

सायं ४। २९ बजे। 🕐

मुल सायं ५।० बजेतक।

पूर्णिमा, होली (वसन्तोत्सव)।

सं० २०७५	, शक	१९४०,	सन्	२०१९,	सूर्य	उत्तराय
तिथि	वार	नक्षः	T	f	देनांक	

सं० २०७५	, হাব	क १९४०, सन् २०१	९, सूर्य	उत्तरायण, शिशिर-ऋतु, फाल्गुन कृष्णपक्ष		
तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि		
प्रतिपदा रात्रिमें ७। ६ बजेतक	बुध	मघा दिनमें ८।५३ बजेतक	२० फरवरी	मूल दिनमें ८।५३ बजेतक।		
द्वितीया सायं ४।५१ बजेतक	गुरु	पू०फा० प्रातः ७।१६ बजेतक	२१ ,,	भद्रा रात्रिमें ३।३९ बजेसे, कन्याराशि दिनमें १।३ बजेतक।		

द्वितीया सायं ४।५१ बजेतक | गुरु | पू०फा० प्रात: ७।१६ बजेतक | २१ 🕠 तृतीया दिनमें २ । ४६ बजेतक । शुक्र ।

हस्त रात्रिमें ४।३६ बजेतक

चतुर्थी 🗥 १२।५७ बजेतक | शनि | चित्रा 🗤 ३।४३ बजेतक स्वाती रात्रिमें ३।१० बजेतक

पंचमी *"* ११।३० बजेतक रिव षष्ठी " १०।२६ बजेतक सोम विशाखा <table-cell-rows> ३। २ बजेतक

संख्या १२]

सप्तमी '' ९। ४८ बजेतक मंगल अनुराधा 🕖 ३ । २३ बजेतक अष्टमी 꺄 ९।४१ बजेतक बुध ज्येष्ठा 🕖 ४। १५ बजेतक

२६ " २७ ,, मूल रात्रिशेष ५।३८ बजेतक गुरु २८ "

नवमी " १० ।५ बजेतक शुक्र पु०षा० अहोरात्र शनि पू०षा० प्रात: ७। २५ बजेतक

दशमी 😗 १०।१ बजेतक एकादशी " १२।२३ बजेतक उ०षा० दिनमें ९।३८ बजेतक द्वादशी 😗 २।१० बजेतक रवि त्रयोदशी 꺄 ४।१० बजेतक सोम श्रवण 🗤 १२। ७ बजेतक

चतुर्दशी रात्रिमें ६।१८ बजेतक मिंगल धिनष्ठा 🕖 २। ४४ बजेतक अमावस्या " ८। २२ बजेतक बुध शतभिषा सायं ५।१८ बजेतक

सं० २०७५, शक १९४०, सन् २०१९, सूर्य उत्तरायण, शिशिर-वसन्त-ऋतु, फाल्गुन शुक्लपक्ष तिथि वार नक्षत्र

प्रतिपदा रात्रिमें १०।१३ बजेतक पू०भा० रात्रिमें ७।४१ बजेतक गुरु द्वितीया" ११ ।४२ बजेतक उ०भा० ११९। ४४ बजेतक शुक्र

तृतीया 🗤 १२। ४३ बजेतक शनि चतुर्थी 😗 १। १७ बजेतक रवि

रेवती ,, ११। २१ बजेतक अश्विनी 😗 १२। ३० बजेतक

सोम भरणी 🗤 १।८ बजेतक मंगल कृत्तिका 🗤 १।१७ बजेतक

पंचमी 😗 १। १७ बजेतक रोहिणी 🗤 १२।५७ बजेतक बुध गुरु मृगशिरा 🗤 १२।१५ बजेतक

षष्ठी 😗 १२। ४३ बजेतक सप्तमी 🗤 ११। ४९ बजेतक अष्टमी \prime १०। २६ बजेतक

शुक्र शनि

नवमी "८।४३ बजेतक दशमी 😗 ६। ४२ बजेतक रवि

एकादशी सायं ४।२८ बजेतक

द्वादशी दिनमें २।८ बजेतक त्रयोदशी '' ११।४२ बजेतक | मंगल| मघा सायं ५।० बजेतक चतुर्दशी '' ९। १९ बजेतक

पूर्णिमा प्रातः ७ । ३ बजेतक । गुरु

आर्द्रा 🗤 ११।११ बजेतक

पुनर्वसु 🕠 ९। ५१ बजेतक

पुष्य 🗤 ८। १९ बजेतक

पू०फा० दिनमें ३।२२ बजेतक

उ०फा० '' १।५३ बजेतक | २१ ''

आश्लेषा 🕠 ६ । ४१ बजेतक सोम ।

बुध

कृपानुभूति

जो प्रकाश दिखायी दे रहा है, आप सभी वहाँ चले जायँ

बालरूप श्रीकृष्णकी भक्तवत्सलता यह बात कोई आठ-दस साल पहलेकी है। हम सपरिवार इन्दौरसे वृन्दावन देव-दर्शनके लिये गये थे। परिवारमें हम सब मिलाकर कुल चौदह सदस्य थे, जिनमें कुछ बुजुर्ग भी थे। हम वृन्दावनमें देव-दर्शनके बाद गोवर्धनकी परिक्रमा करनेके लिये गोवर्धन पहुँचे। परिक्रमा करते-करते हमें रात्रिके नौ बज गये। गोवर्धन आकर हमने ठहरने और भोजनकी तलाश की; क्योंकि परिक्रमासे सभी थक चुके थे और सभी भूखे भी थे। हमने कई धर्मशालाओं, लाज, आश्रम आदिमें ठहरनेके

लिये जगह पानेकी कोशिश की, मगर हमें कहीं भी जगह नहीं मिल रही थी। यही हाल भोजनालयका भी था, किसी भी भोजनालयमें भोजनकी व्यवस्था नहीं हो पा रही थी। रात्रिके साढ़े ग्यारहका समय हो चुका था। हम चौदह लोगोंके खाने-ठहरनेका कोई ठिकाना नहीं मिल रहा था। सभी लोग परेशान और आकुल-व्याकुल होते जा रहे थे। एक तो पैदल चलनेकी थकान, दूसरे भूखे, रात्रिके साढे ग्यारह बजेका समय, अधिकांश सड़कें सुनसान दिखायी दे रही थीं। थकान और भूखसे विचलित हम सब बार-बार भगवान् श्रीकृष्णको ही याद कर रहे थे। हम भटकते रहे, मगर हमें न भोजनालय मिला न ही ठहरनेकी कोई जगह ही मिल पायी। सभी थक-हारकर सड़कपर ही बैठकर भगवान् कृष्णको याद करते हुए सोचने लगे कि किस गलतीके कारण यह परेशानी आयी! इस प्रकार हम चर्चा कर ही रहे थे कि तभी एक

दस-बारहवर्षीय बालक हमारी ओर आया और पूछने लगा—आप सब लोग इस प्रकार सड्कपर क्यों बैठे हो? हमने बालकको बताया कि हम तीन घण्टेसे धर्मशाला, लाज, आश्रम एवं भोजनालयकी तलाश कर रहे हैं, परंतु हमें अभीतक कोई सफलता नहीं मिल पायी

है। इसीसे हम थक-हारकर सड़कपर बैठे हैं। हम सभी

शायद आपकी सारी व्यवस्था वहाँ हो जायगी। थकान और भूखसे आकुल-व्याकुल परेशान हमलोग इतनी दूर जानेमें संकोच कर रहे थे, पीड़ित तो थे ही, एक बार जैसे-तैसे वहाँ चलना चाहिये, शायद कुछ काम बन जाय-इस प्रकार विचारकर हमने परिवारके सदस्योंकी

हिम्मत बढ़ायी और धीरे-धीरे बालकद्वारा बताये प्रकाशकी ओर चल पड़े। कुछ ही समयमें हम वहाँ जा पहुँचे, वह एक आश्रम था। हमने गेटपर जाकर दरबानसे अपनी परेशानी और पीडा बतायी तो वह हमें आश्रमके व्यवस्थापकके पास ले गया। हमने उनसे अपनी व्यथा

बतायी तो उन्होंने हमें आश्रमका एक हाल दे दिया और

सभी सदस्योंके सोने-बिछानेकी व्यवस्थाकर हमारा सारा

सामान भी हालमें रखवा दिया। फिर वे सबको आश्रमके

भोजनालयमें लेकर गये। उस समय रात्रिके करीब १२:३०

बजे हमें भोजनमें मिष्ठान्नके साथ कई प्रकारकी वस्तुएँ

परोसी गयीं। हम चार घण्टेसे विश्राम एवं भोजनके लिये भटक रहे थे और भगवान् श्रीकृष्णको याद कर रहे थे। अन्तत: भगवान् श्रीकृष्णकी ही असीम कृपासे हमें आश्रममें ठहरनेकी अच्छी जगह भी मिली और स्वादिष्ट भोजन भी भर पेट मिला। परिवारके सभी लोग भगवान् कृष्णको यादकर उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए उनकी लीलाका

वर्णन करने लगे। सभीका मत था कि आश्रम दिखानेवाला

वह बालक साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण ही थे, जो बालकके

रूपमें आकर हमारी मदद कर गये। प्रात:काल हम सभी

स्नान आदिसे निवृत्त होकर चलते समय आश्रमके

व्यवस्थापकको कुछ रुपये देने लगे तो उन्होंने रुपये लेनेसे

इनकार कर दिया। हमने आश्रमकी दानपेटीमें अपने सन्तोषके लिये यथायोग्य रुपये डाले और वापस वृन्दावन आ गये। हम यह प्रसंग अक्सर यादकर भगवान् श्रीकृष्णके प्रति नत-मस्तक होकर उनकी कृपा एवं भक्तवत्सलताका गान कापनी प्रोशानी में हैं। इसपर बालक ने कहा गावह सामने के कि प्रोहें। लाक के बात के बात के कि Avinash/Sha

पढो, समझो और करो संख्या १२] पढ़ो, समझो और करो (१) गंगाशंकरने बाँये पाकेट (जेब)-को खोला। देखनेपर न मे भक्तः प्रणश्यति पता चला कि गीताकी पुस्तकपर ही गोली लगी थी, भगवान् श्रीकृष्णद्वारा अपने भक्तोंके कष्टोंके निवारणके जिसको गोली पार नहीं कर पायी थी। पुस्तक एवं अनेक उदाहरण इस कलियुगमें भी मिलते रहते हैं। इस पाकेटका बाहरी भाग ही जला था और चोटसे गंगाशंकर समय एक सच्ची घटना श्रीमद्भगवद्गीताके पाठ करनेवाले बेहोश हो गया था। उपस्थित लोग तथा ब्रिगेड-पल्टनके एक जवानकी यहाँ दी जा रही है— कमाण्डर सब कहने लगे—'गीताजीने ही इसको बचाया द्वितीय विश्व युद्धके समय जब जापानने मलाया, है।' इसलिये हम सबको ज्ञान होना चाहिये कि ईश्वर अण्डमान, निकोबार तथा ब्रह्मामें कब्जा कर लिया, तब सर्वत्र है और भक्तोंकी अदृश्य हाथोंसे रक्षा करता है। अंग्रेजोंने अराकानके रास्ते उनपर हमला आरम्भ किया। भगवान्ने गीतामें स्वयं कहा है—'न मे भक्तः प्रणश्यति।' कुछ हिन्दुस्तानी पल्टनें थीं। उनमें एक पल्टनमें गंगाशंकर —कैप्टन बी०पी० बडोला नामक एक सिपाही भी था, जो बराबर प्रात: गीताका (२) अपरिचित व्यक्तियोंद्वारा की गयी सहायता पाठ किया करता था और तब प्रतिदिनका काम करता था। उसके साथके सिपाही समय-समयपर बड़ा मजाक घटना २० फरवरी, २०१८ मंगलवारकी है। यह भयावह हादसा आज भी हमारे परिवारकी आँखोंके किया करते थे कि 'गीतामें भगवान् हैं, क्या तुमने उन्हें देखा?' वे कहते थे कि सामिष भोजन करो, घासवाला सामने चलचित्र-सा चलायमान रहता है। घटना मेरे भोजन क्या खाता है ? बहादुर बनो। वह मुसकराभर देता साले श्रीविमलजी मूंदड़ा दिल्ली-निवासीके साथ हुई। था, बाकी कुछ नहीं बोलता था। यदि बोलता था तो १९ फरवरी २०१८ को वे अपने परिचितके पोतेकी यही कि मुझे चारों ओर भगवान् दीख रहे हैं। वह बराबर शादीके लिये उदयपुर गये हुए थे। दिनांक २० को प्रात: गीताजीको वर्दीकी जेब (बाँयी जेब)-में रखता था, जहाँ विवाहसे विदाई लेकर वापस दिल्ली आनेके लिये वे आमतौरपर सिपाही ए०बी० ६४ एम० किताबको रखते हैं। एयरपोर्ट जा रहे थे। उस समय उनके साथ गाड़ीकी एक दिन ऐसा हुआ कि रातको जापानियोंके आगेवाली सीटपर उनका एक मित्र तथा ड्राइवर बैठा था तथा पीछेकी सीटपर वे स्वयं बैठे थे। अचानक हाईवेपर विरुद्ध आक्रमण करनेके लिये हुक्म हुआ। रात अँधेरी थी, सिपाहियोंको जंगलमें हमला करनेके लिये चलना पीछेसे तीव्र गतिसे आती गाड़ीने जबरदस्त टक्कर मार पड़ा। कुछ दूर चलनेपर जापानियोंने आक्रमण कर दी तथा दूसरी ओरसे आ रहे ट्रकसे भी उनकी गाड़ीकी दिया। दोनों दलोंमें घमासान लड़ाई अँधेरेमें हो गयी। जबरदस्त भिड़न्त हो गयी। इसमें मेरे सालेकी गाड़ी तो चार बजे सुबहतक जापानी वापस चले गये और ये लोग चकनाचूर हो गयी तथा आगेवाली सीटपर बैठे दोनों अपने मुर्दे और आहतोंको उठाने लगे। उन लोगोंने सज्जन मृत्युलोकको प्राप्त हो गये। विमलजी पूरी तरह घायल हो चुके थे, किंतु प्रभु हनुमान्जीकी कृपासे मुर्दोंके बीचमें जब गंगाशंकरकी तरफ हाथ बढ़ाया तब बाल-बाल बच गये। पीछेसे टक्कर मारनेवाली गाड़ीके तो उन्हें आश्चर्य हुआ कि हाथ बढ़ाते ही गंगाशंकर उठ बैठे और चलने लगे। अब सारे-के-सारे जवान ड़ाइवरकी भी मृत्यु हो गयी। तेज रफ्तार जिन्दगी आश्चर्यचिकत हो गये कि मुर्दीमेंसे यह कैसे उठा और महानगरोंकी संस्कृति बन गयी है और इसने संवेदनहीनता उसके शरीरको देखने लगे कि इसे गोली कहाँ लगी है? और स्वार्थपरताको बढ़ावा दिया है। अत: महानगरोंमें

४४ कल्प	ग्राण [भाग ९२

लोग ऐसी दुर्घटनाओंकी ओर देखकर भी प्राय: आँख	समय रुपया क्यों नहीं लिया?' तब उस पात्रने जवाब
फेर लेते हैं। ऐसेमें बाबाकी कृपासे एक अपरिचित	दिया कि—' उस समय मैं त्याग और वैराग्यकी प्रतिमूर्ति,
गाड़ीके ड्राइवरने उनको गाड़ीसे निकालनेका प्रबन्ध	चैतन्य महाप्रभुके वेषमें था, उस वेषमें मैं कैसे रुपया
किया तथा फोनसे उनके बड़े भाईको दिल्लीमें सूचित	ग्रहण करता?'—नन्दलाल टाँटिया
किया। उसके बाद उस सज्जन ड्राइवरने उपचार कराकर	(8)
उन्हें एयरपोर्ट छोड़ा तथा पुन: दिल्ली फोन किया कि	मूर्तिके अपमानका परिणाम
अब मैं जा रहा हूँ। हम उस सज्जन ड्राइवरके	अंग्रेजोंके शासनकालकी बात है, एक अंग्रेज
जीवनपर्यन्त ऋणी रहेंगे। तबतक हमारे परिचित लोग	श्रीडब्लू० आर० यूल कलकत्तेमें मेसर्स एटलस इन्स्योरेंस
अस्पताल पहुँच गये और उनमेंसे एक परिचितके साथ	कम्पनी लिमिटेडमें ईस्टर्न सेक्रेटरीके पदपर कार्य करते
विमलजी दिल्ली आ गये। हमारे लिये वह सज्जन	थे। इस कम्पनीका कार्यालय ४, क्लाइव रोडपर स्थित
ड्राइवर बाबाद्वारा भेजा हुआ दूत ही था, उसने आकर	था। इनको पत्नी श्रीमती यूलने सन् १९११ या १९१२
उनकी प्राणरक्षा की, अन्यथा अधिक रक्तस्राव होनेसे	ई०के लगभग जयपुरसे एक श्रीगणपितकी मूर्ति खरीदी,
कुछ भी हो सकता था।	जबिक वे इंग्लैण्ड जा रही थीं। वे अपने पतिको कलकत्ता
यह घटना यहीं समाप्त नहीं होती है। उदयपुरमें	छोड़कर इंग्लैण्ड चली गयीं तथा उन्होंने अपनी बैठकमें
इलाजके दौरान अचानक एक अपरिचित सज्जन महिला	कारनिसपर गणपतिजीकी प्रतिमा सजा दी।
आयीं और उहोंने १०,००० रुपये गुप्त रूपमें दानमें जमा	एक दिन श्रीमती यूलके घर भोज हुआ तथा उनके
किये और बोलकर गयीं कि इनका तुरंत इलाज शुरू कर	मित्रोंने गणेशजीकी प्रतिमाको देखकर उनसे पूछा—'यह
दें। हमें तो अस्पतालका बिल आनेपर पता चला। हम	क्या है ?'
उन सज्जन महिलाके भी जीवनभर ऋणी रहेंगे।	श्रीमती यूलने उत्तर दिया—'यह हिंदुओंका सूँडवाला
इस घटनासे हमें पूरा विश्वास हो गया कि	देवता है।' उनके मित्रोंने गणेशजीकी मूर्तिको बीचकी
परमात्माका स्मरण बड़ी-से-बड़ी विपत्तियोंसे बचा लेता	मेजपर रखकर उनका उपहास करना आरम्भ किया।
है और आज भी समाजमें ऐसे लोग हैं, जो अपरिचित	किसीने गणपतिके मुखके पास चम्मच लाकर पूछा—
व्यक्तिकी सहायता करना अपना धर्म और नैतिक कर्तव्य	'इसका मुँह कहाँ है?'
समझते हैं।—मूलचन्द सोमानी	जब भोज समाप्त हो गया, तब रात्रिमें श्रीमती
(३)	यूलकी पुत्रीको ज्वर हो गया, जो बादमें बड़े वेगसे बढ़ता
सच्चा नाटक	गया। वह अपने तेज ज्वरमें चिल्लाने लगी, 'हाय!
घटना पुरानी है, एक बार सरदार शहरमें चैतन्य	सूँडवाला खिलौना मुझे निगलनेको आ रहा है।'
महाप्रभुपर आधारित नाटक हो रहा था। जिस पात्रने	डाक्टरोंने सोचा कि वह सन्निपातमें बोल रही है; किंतु
चैतन्य महाप्रभुका अभिनय किया, वह अभिनय करके	वह रात-दिन यही शब्द दुहराती रही एवं अत्यन्त
लौटने लगा तब एक दर्शकने उसे एक रुपया भेंट करना	भयभीत हो गयी। श्रीमती यूलने यह सब वृत्तान्त अपने
चाहा। उसने नहीं लिया, ग्रीन रूममें जाकर अपने	पतिको कलकत्ते लिखकर भेजा। उनकी पुत्रीको किसी
साधारण कपड़े पहनकर जब वह बाहर आया। तब उस	भी औषधने लाभ नहीं किया।
व्यक्तिसे रुपया माँगने लगा। उसने कहा कि—'उस	एक दिन श्रीमती यूलने स्पप्नमें देखा कि वे अपने

संख्या १२] पढ़ो, समझ	ो और करो ४५

बागके संलापगृहमें बैठी हैं। सूर्यास्त हो रहा है।	अन्तमें जब स्वामी श्रीकेशवानन्दजी श्रीश्रीकात्यायनी
अचानक उन्हें प्रतीत हुआ कि एक घुँघराले बाल और	मॉॅंकी अष्टधातुकी मूर्ति पसंद करके लानेके लिये
मशाल-सी जलती आँखोंवाला पुरुष हाथमें भाला लिये,	कलकत्ते गये, तब केदारबाबूने उनके पास आकर
वृषभपर सवार, बढ़ते हुए अन्धकारसे उन्हींकी ओर आ	कहा—'गुरुदेव! मैं आपके पास वृन्दावन ही आनेका
रहा है एवं कह रहा है—'मेरे पुत्र सूँडवाले देवताको	विचार कर रहा था। मैं बड़ी आपत्तिमें हूँ। मेरे पास
तत्काल भारत भेज; अन्यथा मैं तुम्हारे सारे परिवारका	पिछले कुछ दिनोंसे एक गणेशजीकी प्रतिमा है। प्रतिदिन
नाश कर दूँगा।' वे अत्यधिक भयभीत होकर जाग उठीं।	रात्रिको स्वप्नमें वे मुझसे कहते हैं कि 'जब श्रीश्रीकात्यायनी
दूसरे दिन प्रातः ही उन्होंने उस खिलौनेका पार्सल	माँकी मूर्ति वृन्दावन जायेगी तो मुझे भी वहाँ भेज
बनाकर पहली डाकसे ही अपने पतिके पास भारत भेज	देना। कृपया आप इन्हें स्वीकार करें।' गुरुदेवने कहा—
दिया। श्रीयूल साहबको पार्सल मिला और उन्होंने	'बहुत अच्छा, तुम वह मूर्ति स्टेशनपर ले आना। मैं
श्रीगणेशजीकी प्रतिमाको कम्पनीके कार्यालयमें रख	तूफान एक्सप्रेससे जाऊँगा। जब माँ जायगी तो उनका
दिया। कार्यालयमें श्रीगणेशजी तीन दिन रहे, पर उन तीन	पुत्र भी उनके साथ ही जायगा।' सिद्ध गणेशजीकी
दिनोंतक कार्यालयमें सिद्ध-गणेशके दर्शनार्थ कलकत्तेके	यही मूर्ति भगवती कात्यायनीजीके राधाबाग मन्दिरमें
नर-नारियोंकी भीड़ लगी रही। कार्यालयका सारा कार्य	प्रतिष्ठित है।
रुक गया। श्रीयूलने अपने अधीनस्थ इंस्योरेंस एजेंट	इनकी वृन्दावनमें बड़ी मान्यता है।
श्रीकेदारबाबूसे पूछा कि 'इस देवताका क्या करना	—महन्त स्वामी श्रीविद्यानन्द
चाहिये ?' अन्तमें केदारबाबू गणेशजीको अपने घर ७,	(५)
अभयचरण मित्र स्ट्रीटमें ले गये एवं वहाँ उनकी पूजा	आयुर्वेदिक घरेलू नुस्खे
प्रारम्भ करवा दी। तबसे सभी श्रीकेदारबाबूके घरपर ही	🕏 एक चम्मच मेथीदाना, २ ग्राम काला नमक
जाने लगे।	पीसकर पानीके साथ फंकी लेनेसे पेटकी गैससे आराम
इधर वृन्दावनमें स्वामी केशवानन्दजी महाराज	मिलता है।
कात्यायनी-देवीकी पंचायतन पूजन-विधिसे प्रतिष्ठाके	🕏 एक चम्मच सौंफको आधा कप पानीमें भिगोकर
लिये सनातन–धर्मको पाँच प्रमुख मूर्तियोंका प्रबन्ध	रखें। पानीको छानकर दूधमें मिलाकर पिलानेसे बच्चोंका
कर रहे थे। श्रीकात्यायनी-देवीकी अष्टधातुसे निर्मित	पेट फूलना आदि बन्द हो जाता है।
मूर्ति कलकत्तेमें तैयार हो रही थी तथा भैरव चन्द्रशेखरकी	🕏 बबूलकी लकड़ीके कोयले एवं लौंग महीन
मूर्ति जयपुरमें बन गयी थी। जब कि महाराज गणेशजीकी	पीसकर सुबह-शाम मंजन करनेसे दाँत साफ तथा
प्रतिमाके विषयमें विचार कर रहे थे, तब उन्हें माँका	दुर्गन्धरहित हो जाते हैं।
स्वप्नादेश हुआ कि 'सिद्ध गणेशकी एक प्रतिमा	🕏 अजवायनका चूर्ण छ: भाग और पिसा काला
कलकत्तेमें केदारबाबूके घरपर है। जब तुम कलकत्तेसे	नमक एक भाग लेकर मिला लें। इसमेंसे २ ग्राम (आधा
मेरी प्रतिमा लाओ, तब मेरे साथ मेरे पुत्रको भी लेते	चम्मच) गर्म जलसे लेनेपर पेटदर्दमें तुरंत आराम मिलता
आना।' अतः स्वामी श्रीकेशवानन्दजीने अन्य चार	है। बच्चोंको आधी मात्रामें दें। इससे अफरा, वायुगोला
मूर्तियोंके बननेपर गणपतिकी मूर्ति बनवानेका प्रयत्न	एवं पेटकी गैस भी मिटती है।
नहीं किया।	—सत्यनारायण सामरिया, सम्पर्क—०९४६०९९४८६०

मनन करने योग्य सच्चा गीतापाठ

है, उसीके दर्शनोंसे मैं पागल-सा बन जाता हूँ। लोग मेरे श्रीचैतन्यमहाप्रभु सायंकालके समय जंगलोंमें घूमने

पाठको सुनकर पहले बहुत हँसते थे। बहुत-से तो मुझे जाया करते थे। एक दिन वे एक बगीचेमें गये। वहाँ

जाकर उन्होंने देखा एक ब्राह्मण आसन लगाये बड़े ही

प्रेमके साथ गद्गद कण्ठसे गीताका पाठ कर रहा है।

यद्यपि वह श्लोकोंका उच्चारण अशुद्ध कर रहा था,

किंतु पाठ करते समय वह ध्यानमें ऐसा तन्मय था कि

उसे बाह्य संसारका पता ही नहीं रहा। वह भावमें मग्न होकर श्लोकोंको बोलता था, उसका सम्पूर्ण शरीर

रोमांचित हो रहा था, नेत्रोंसे जल बह रहा था। महाप्रभु

बहुत देरतक खड़े-खड़े उसका पाठ सुनते रहे। जब वह पाठ करके उठा, तब महाप्रभुने उससे अत्यन्त ही स्नेहके

साथ पूछा—'क्यों भाई, तुम्हें इस पाठमें ऐसा क्या

आनन्द मिलता है, जिसके कारण तुम्हारी ऐसी अद्भुत दशा हो जाती है! इतने ऊँचे प्रेमके भाव तो अच्छे-

अच्छे भक्तोंके शरीरमें प्रकट नहीं होते, तुम अपनी प्रसन्नताका मुझसे ठीक-ठीक कारण बताओ?' उस पुरुषने कहा—'भगवन्! मैं एक अपठित

बुद्धिहीन ब्राह्मण-वंशमें उत्पन्न हुआ निरक्षर और मूर्ख ब्राह्मणबन्धु हूँ। शुद्धाशुद्धका कुछ भी बोध नहीं है। मेरे गुरुदेवने मुझे आदेश दिया था कि तू गीताका नित्यप्रति पाठ किया कर। भगवन्! मैं गीताका अर्थ क्या जानूँ।

मैं तो पाठ करते समय इसी बातका ध्यान करता हूँ कि सफेद रंगके चार घोड़ोंसे जुता हुआ एक बहुत सुन्दर रथ खड़ा हुआ है। उसकी विशाल ध्वजापर हनुमान्जी

विराजमान हैं, खुले हुए रथमें अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित अर्जुन कुछ शोकके भावसे धनुषको नीचे रखे हुए बैठा है। भगवान् अच्युत सारथीके स्थानपर बैठे हुए कुछ

मन्द मुसकानके साथ अर्जुनको गीताका उपदेश कर रहे हैं। बस, भगवानुकी इसी रूपमाधुरीका पान करते-करते

में अपने-आपको भूल जाता हूँ। भगवान्की वह

बुरा-भला भी कहते थे। अब कहते हैं या नहीं—इस

बातका तो मुझे पता नहीं है, किंतु मैंने किसीकी हँसीकी कुछ परवा नहीं की। मैं इसी भावसे पाठ करता ही रहा। अब मुझे इस पाठमें इतना रस आने लगा है कि मैं

एकदम संसारको भूल-सा जाता हूँ। उसकी बात सुनकर महाप्रभु बड़े ही मीठे स्वरसे कहने लगे, 'विप्रवर! तुम धन्य हो, यथार्थमें गीताका

असली अर्थ तो तुमने ही समझा है। भगवान् शुद्ध अथवा अशुद्ध पाठसे प्रसन्न या असन्तुष्ट नहीं होते। वे

तो भावके भूखे हैं। भावग्राही भगवान्से किसीके मनकी बात छिपी नहीं है। लाखों शुद्ध पाठ करो और भाव अशुद्ध हैं, तो उनका फल अशुद्ध ही होगा। यदि भाव

शुद्ध हैं और अक्षर चाहे अशुद्ध भी उच्चारण हो जायँ तो उसका फल शुद्ध ही होगा। भावोंकी शुद्धिकी ही अत्यन्त आवश्यकता है। भाव शुद्ध होनेपर पाठ शुद्ध हो तब तो बहुत ही अच्छा है। सोनेमें सुगन्ध है और यदि

कहा है-मुर्खो वदित विष्णाय धीरो वदित विष्णवे। तयोः फलं तु तुल्यं हि भावग्राही जनार्दनः॥

पाठ शुद्ध न भी हो तो भी कोई हानि नहीं। जैसा कि

अर्थात् 'मूर्ख कहता है, 'विष्णाय नमः' और पण्डित कहता है 'विष्णवे नमः' भाव शुद्ध होनेसे इन दोनोंका फल समान ही होगा। कारण कि भगवान्

जनार्दन भावग्राही हैं।' महाप्रभुके मुखसे इस बातको सुनकर उस ब्राह्मणको बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने उसी समय प्रभुको

आत्मसमर्पण कर दिया। जबतक प्रभु श्रीरंगक्षेत्रमें रहे, तबतक वह महाप्रभुके साथ ही रहा।

त्रिलोकपावनी मुर्ति मेरे ने ग्रेंके सामने तुन्य / disc. gg/dharma | MADE WYPPPP एक धेए भूरप्रति बहु स्रोप

(भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार-सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र)

'कल्याण'

-के ९२वें वर्ष (वि०सं० २०७४-७५, सन् २०१८ ई०)-के दूसरे अङ्कसे बारहवें अङ्कतकके निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक विषय-सूची

(विशेषाङ्ककी विषय-सूची उसके आरम्भमें देखनी चाहिये, वह इसमें सम्मिलित नहीं है।)

निबन्ध-सूची

विषय

२६- उपनिषदोंमें आये कतिपय आख्यान

सं०११-पृ०५, सं०१२-पृ०५

४३- कैकेयीका सती होनेका प्रयास

३७- कल्याणका आगामी ९३वें वर्ष (सन् २०१९ ई०)-का

३९- काशीके सिद्धयोगी हरिहरबाबा [संत-चरित] (आचार्य

सं०१०-पृ०४६, सं०११-पृ०४६, सं०१२-पृ०४२

४४- क्या सुख-भोग ही जीवन है ? (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी

४८- गीताका प्रथम अध्याय (श्रीब्रह्मचारी महानामव्रतदास,

४६ - खेतीमें अमृतपानीका विशेष लाभ (वैद्य श्रीमती

४७- गयाके रुद्रपदतीर्थमें रामजीद्वारा पिण्डदान

४९- गुरु अलौकिक तत्त्व अथवा शरीर ?

विशेषाङ्क 'श्रीराधामाधव-अङ्क'..... सं०६-पृ०४८

श्रीबलरामजी शास्त्री, एम०ए०, साहित्यरत्न) सं०१२-पृ०३२

पु०४६, सं०६-पु०४३, सं०७-पु०४६, सं०८-पु०४६, सं०९-पु०४६,

(मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामिकंकरजी उपाध्याय) सं०१०-पृ०९

श्रीशरणानन्दजी महाराज)[प्रेषक—श्रीहरी मोहनजी] .. सं०८-पृ०४१

नन्दिनीजी भोजराज, एम०डी० (आयुर्वेद))...... सं०११-पृ०४०

[आवरणचित्र-परिचय] सं०९-पृ०६

एम०ए०, पी-एच०डी०) सं०१२-पृ०९

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) ... सं०१२-पृ०३६ ५०- गृह-दीप बुझते जा रहे हैं! (श्रीरामनाथजी 'सुमन') सं०६-पृ०१४

४५- क्षमाने दुर्जनको सज्जन बनाया सं०४-पृ०८

३८- कामधेनु [कहानी] (श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र') सं०८-पृ०३७

४०- काष्ठविग्रह भगवान् जगन्नाथके प्राकट्यकी कथा ... सं०७-पृ०३३

४१- कृतज्ञता (श्रीअगरचन्दजी नाहटा) सं०९-पृ०१७

४२- कृपानुभूति—सं०२-पृ०४६, सं०३-पृ०४६, सं०४-पृ०४६, सं०५-

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

१ - अच्छा पैसा ही अच्छे काममें लगता है [प्रेरक कथा] ... सं०८-पृ०२५

(श्रीअर्जुनलालजी बन्सल)सं०२-पृ०२६ १२- अहंकार : विनाशका बीज (डॉ० गो० दा० फेगडे) सं०८-पृ०३१

(पं० श्रीवैद्यनाथजी अग्निहोत्री)...... सं०९-पृ०२७

(पं० श्रीरामस्वरूपजी पाण्डेय)...... सं०९-पृ०३८

(श्रीअगरचन्दजी नाहटा)..... सं०७-पृ०१५

(श्रीकृष्णचन्द्रजी टवाणी) सं०११-पृ०२९

(से॰नि॰बिग्रेडियर श्रीकरणसिंहजी चौहान) सं०४-पृ०२०

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) ... सं०११-पृ०३८

एम०ए०, डी०पी०एड०, साहित्यालंकार)...... सं०६-पृ०२९

महाराज) सं०११-पृ०२५ २३- उदारता (पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल) सं०६-पृ०८

श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी महाराज) सं०२-पृ०११

२४- उद्यमका जादू सं०११-पृ०८

१८- आनन्द-स्वरूप (संत श्रीभूपेन्द्रनाथजी सान्याल) सं०३-पृ०१५

१९- इन्द्रदर्पहारिणी भगवती उमा [आवरणचित्र-परिचय] सं०२-पृ०६

२१ - ईश्वरीय प्रेमकी सार्थकता (श्रीविजयकुमारजी श्रीवास्तव,

२२- उत्तम गृहवधू (परम पूज्य स्वामी श्रीगोविन्ददेवगिरिजी

२५- उनकी क्रीड़ा (गोलोकवासी संत पूज्यपाद

विषय

११- 'अहो पथिक कहियो उन हरि सौं...'

१४- आतिथेयी [गोभक्ति-कथा]

१६- आत्मशान्ति—क्यों एवं कैसे?

१७- आनन्दमय जीवनके स्वर्णिम सूत्र

२०- ईश्वर और उनके अवतार

१३- आचार्य श्रीशंकरके श्रीचरणोंमें श्रद्धा-सुमन

१५- आत्मकल्याणका एक महान् सूत्र-भूल जाओ

२- अनन्य भगवत्प्रेमसे ही जीवनकी सार्थकता	(डॉ० श्री के० डी० शर्माजी)सं०२-पृ०२४
(श्रीभॅंवरलालजी परिहार) सं०३-पृ०२७	२७- उलाहना भी प्रेमतत्त्व है (डॉ० श्रीअशोकजी पण्ड्या) सं०४-पृ०२४
३- अनमोल बोल सं०९-पृ०२२	२८- उसने क्या कहा? (पं० श्रीईश्वरचन्द्रजी तिवारी) सं०२-पृ०३०
४- अन्तकालकी भावना (श्रीबरजोरसिंहजी) सं०४-पृ०१८	२९- ऋण लेकर भूलना नहीं चाहिये [प्रेरक-प्रसंग] सं०४-पृ०४२
५– अन्तकालमें क्या करें ? (श्रीरूपचन्दजी शर्मा) सं०१०–पृ०२९	३०– एकमुखी रुद्राक्षकी महिमा सं०७–पृ०३२
६ – अपेक्षाएँ अशान्तिको जन्म देती हैं	३१ - कब खुलेंगे तेरे अन्तर्चक्षु ?
(श्रीबृजमोहनजी गोयल)सं०६-पृ०३३	(डॉ० श्रीशैलजाजी अरोड़ा)सं०१२-पृ०२२
७- 'अब, होउ राम अनुकूला'	३२- कर्मफल [बोधकथा] (श्रीराजेशजी माहेश्वरी) सं०९-पृ०१६
(प्रो० श्रीबालकृष्णजी कुमावत)सं०११-पृ०१९	३३- कर्मफलभोगमें परतन्त्रता सं०८-पृ०१९
८- अर्जुनका रथ (श्रीराजेन्द्र बिहारीलालजी) सं०१२-पृ०१८	३४- कर्म–मीमांसा (श्रीरूपचन्दजी शर्मा) सं०८-पृ०२४
९- अल्पमें सुख नहीं है (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी	३५- कलियुगके अन्तमें— [कहानी]
श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) सं०६-पृ०११	(श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')सं०१२-पृ०२६
१०- अहैतुकी कृपा करनेवाले अतिशय दयालु प्रभु	३६ - कल्याण—सं०२-पृ०५, सं०३-पृ०५, सं०४-पृ०५, सं०५-पृ०५,
(श्रीहरी मोहनजी)सं०९-पृ०३२	सं०६-पृ०५, सं०७-पृ०५, सं०८-पृ०५, सं०९-पृ०५, सं०१०-पृ०५,

[88]

विषय

८९- पर हित सरिस धर्म निहं भाई (श्रीसीताराम गुप्ताजी) ... सं०५-पृ०१८

९०- परिवर्तनशीलके लिये सुख-दु:ख क्या मानना

पृष्ठ-संख्या

विषय

५१- गोमाता भारतकी आत्मा हैं (गोलोकवासी जगद्गुरु

श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वर-

श्रानिम्बाकाचायपाठाधाश्वर श्राराधासवश्वर-	५०- पारवतनशालक ।लय सुख-दु:ख क्या मानना
शरणदेवाचार्य श्री 'श्री जी' महाराज)सं०१२-पृ०३७	[प्रेरक-कथा]सं०६-पृ०१६
५२- गोमूत्रका चमत्कार (श्रीभगवतीलालजी हींगड) सं०६-पृ०३९	९१- परिवारमें परस्पर प्रेमका महत्त्व
५३- गोमूत्रके चमत्कार सं०२-पृ०४२	(श्रीअर्जुनलालजी बंसल) सं०७-पृ०२३
५४- गोमूत्रसे कैंसरका सफल इलाज	९२- पवनसुतके लंका-प्रवासकी एकादश उपलब्धियाँ
(श्रीउमेशजी पोरवाल) सं०३-पृ०४१	(डॉ॰ श्रीगार्गीशरण मिश्रजी 'मराल') सं॰५-पृ०२१
५५ - गोषु दत्तं न नश्यित	९३ - परब्रह्म परमेश्वरके अवतारतत्त्वका रहस्य
	(श्रीजगदीशप्रसादजी गुप्ता)सं०१०-पृ०१८
(पं० श्रीरामस्वरूपदासजी पाण्डेय)सं०१०-पृ०३६	
५६ - 'गोषु पाप्मा न विद्यते' [कहानी]	९४- पर्वताकार श्रीहनुमान्जी [आवरणचित्र-परिचय] सं०६-पृ०६
(श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')सं०५-पृ०४०	९५– पढ़ो, समझो और करो—सं०२–पृ०४७, सं०३–पृ०४७, सं०४–पृ०४७,
५७- गौ-महिमा सं०५-पृ०४२	सं०५-पृ०४७, सं०६-पृ०४४, सं०७-पृ०४७, सं०८-पृ०४७, सं०९-
५८– गौ—लोकमाता [कहानी] (श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र'). सं०४–पृ०४०	पृ०४७, सं०१०-पृ०४७, सं०११-पृ०४७, सं०१२-पृ०४३
५९- चित्रकूटके घाटपर [आवरणचित्र-परिचय] सं०८-पृ०६	९६- पाप और पुण्य—हिंसा और अहिंसा
६०– चेतनाका प्रकाश (पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल) सं०४–पृ०१४	(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) सं०९-पृ०७
६१- जगत्का स्वरूप सं०३-पृ०१२	९७- पुण्य और पाप (श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ वीतराग
्. ६२- जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं! (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) सं०९-पृ०९	स्वामी श्रीदयानन्दगिरिजी महाराज) सं०८-पृ०१४
६३- जिज्ञासा और उसकी प्रक्रिया (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) सं०४-पृ०९	९८- पुरुषोत्तममासका महत्त्व एवं कर्तव्य सं०४-पृ०२३
६४- जीवकी तृप्ति कैसे हो ? (नित्यलीलालीन	९९- प्रकृति (श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ वीतराग
४ इ.स.चित्राचारा प्राप्त का स्वाप्त प्राप्त प्राप्त प्राप्त प्राप्त प्राप्त प्राप्त प्राप्त प्राप्त प्राप्त प् स्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)सं०५–पृ०१०	स्वामी श्रीदयानन्दिगिरिजी महाराज)सं०१०-पृ०१४
	१००- प्रतीक्षा (श्रीहरिश्चन्द्रजी अष्टाना 'प्रेम') सं०७-पृ०३४
६५ - जीवनकी प्रयोगशाला (पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल,	
एम०ए०, बी०टी०) सं०३-पृ०११	१०१ – ब्रह्मचर्य (श्रीकैलाशचन्द्रजी शर्मा) सं०२ – पृ०३७
६६ – जीवनमें नया परिवर्तन (डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र,	१०२- भक्तको साधना [गद्य-काव्य]
एम० ए०, पी०एच० डी०) सं०६-पृ०२२	(श्रीछैलबिहारीजी गुप्त 'छैल')सं०१०-पृ०२२
६७– जो तोकोँ काँटा बुवै, ताहि बोइ तू फूल![प्रेरक–प्रसंग]. सं०५–पृ०३४	१०३- भक्त जलारामजी [संत-चरित]
६८- ज्ञान (श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ वीतराग	(शास्त्री श्रीमंगलजी उद्धवजी पुरोहित)सं०४-पृ०३३
स्वामी श्रीदयानन्दगिरिजी महाराज) सं०११-पृ०९	१०४- भक्त नीलाम्बरदास [संत-चरित]सं०११-पृ०३३
६९– ज्ञान–कोष [प्रेरक कथा] सं०३–पृ०२६	१०५- भक्ति—अर्थ एवं स्वरूप
७०- तीर्थराज प्रयाग (डॉ० श्रीशिवशेखरजी मिश्र) सं०१२-पृ०३०	(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) . सं०३-पृ०१६
७१- तू ही माता, तू ही पिता है! (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) सं०२-पृ०१९	१०६ – भक्ति और उसकी प्राप्तिके साधन
७२- तृष्णा (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी	(श्रीमती विश्वमोहिनीजी, एम० ए०) सं०८-पृ०२०
श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) सं०११-पृ०१०	१०७- भगवती श्रीगायत्री [आवरणचित्र-परिचय]सं०४-पृ०६
७३ – दयालु दीनबन्धुके बड़े विशाल हाथ हैं	१०८- भगवती श्रीलक्ष्मीजी [आवरणचित्र-परिचय] सं०११-पृ०६
	१०९- भगवत्प्रेमका रहस्य [प्रेरक-प्रसंग—] सं०७-पृ०१४
[एक सत्य घटना] (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)सं०५-पृ०२७	
७४- दिव्य मन्दिर [प्रेरक-प्रसंग]सं०१२-पृ०३४	११०- भगवद्गुण-महिमा सं०११-पृ०३६
७५ - दुर्गासप्तशतीमें 'नमस्तस्यै' पदकी पुनरावृत्तिका रहस्य	१११- भगवद्दर्शन (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी
(श्रीकैलाश प्ंकजजी श्रीवास्तव)सं०१०-पृ०२०	श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) सं०४-पृ०१२
७६- दुर्जनसे दूर रहें सं०२-पृ०३१	११२-भगवान्की दया
७७- दुर्जन-संगका फल [प्रेरक-प्रसंग] सं०४-पृ०३२	(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) सं०११-पृ०७
७८– दूसरोंकी तृप्तिमें तृप्ति [प्रेरक–प्रसंग] सं०५–पृ०१२	११३- भगवान्की प्राप्ति करानेवाले उत्तम गुण और आचरण
७९- दैवी विपत्तियाँ और उनसे बचनेका उपाय (नित्यलीला-	(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) सं०३-पृ०८
लीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) सं०३-पृ०१३	११४- भगवान्की प्राप्तिके कुछ सरल और निश्चित उपाय
८० – नकद धर्म (श्रीनन्दलालजी टाँटिया)सं०१० – पृ०८	(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) सं०२-पृ०७
८१- नथ [संत-चरित] (श्रीशिवचरणजी चौहान) सं०१०-पृ०२८	११५ - भगवानुके अवतार लेनेका कारण
८२- निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक	(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) . सं०६-पृ०३५
विषय-सूचीसं०१२-पृ०४७	११६ - भगवान् नारायणका भजन ही सार है सं०५ - पृ०३७
८३- निवेदिता [कहानी] (श्रीशंकरलालजी माहेश्वरी) सं०१०-पृ०३२	११७- भगवान् व्यास [आवरणचित्र-परिचय] सं०७-पृ०६
८२- । नवादता [कहाना] (त्राराकरलालाजा माहरवरा) स०१०-पृ०३२ ८४- पथिक [आध्यात्मिक कथा]	११८- भगवान् शंकर (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी
(श्रीसत्यप्रकाशजी किरण)सं०३-पृ०२५	श्रीरामसुखदासजी महाराज)सं०२-पृ०२१
८५ - परम योग [कहानी] (श्रीसुदर्शन सिंहजी 'चक्र') सं०६ - पृ०२५	११९- भगवान् श्रीशिव और भगवान् श्रीराम (नित्यलीलालीन
८६ - परमात्माके दुर्शनमें बाधक कौन?	श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) सं०१२-पृ०१३
(डॉ॰ श्रीरामेश्वरप्रसादजी गुप्त)सं॰४-पृ०२६	१२०- भारतीय आयुर्वेद चिकित्सा-जगत् का मूलाधार है
८७- परमात्मप्राप्तिका साधनरूप रथ-रथी-रूपक सं०१२-पृ०८	(आचार्य डॉ० श्री वी०के० अस्थाना) सं०६-पृ०३१
८८- परमात्माकी प्राप्तिके लिये निराश नहीं होना चाहिये	१२१- भारतीय संस्कृतिमें पशु-पक्षियोंका महत्त्व
(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) सं०५-पृ०७	(श्रीइन्द्रलालजी शास्त्री विद्यालंकार) सं०५-पृ०३१

[88]

_ विषय

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

विषय

१२२-	भ्रष्टाचार और उससे बचनेका उपाय (नित्यलीलालीन	१५६-	लक्ष्मीका वास कहाँ है ? सं०६-पृ०१८
	श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) सं०२-पृ०१५		वर्तमान शिक्षा-व्यवस्थामें मूल्यपरकताकी आवश्यकता
१२३-	मन-इन्द्रियोंको वशमें करके परमात्माको प्राप्त करें		(डॉ० श्रीरविशेखरजी वर्मा, एम०ए०, पी-एच०डी०) सं०४-पृ०३०
	(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) सं०१२-पृ०७	१५८-	वल्लभसम्प्रदाय और उसके अष्ट कवि
१२४-	मनकी चमत्कारी शक्तियाँ		(श्रीआनन्दकुमार शुक्ला, वरिष्ठ शोध अध्येता) सं०४-पृ०३६
•	(पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल, एम०ए०) सं०७-पृ०८	१५९-	विकासका भयावह पक्ष (श्रीगणेशदत्तजी दुबे) सं०११-पृ०२७
१२५-	मनन करने योग्य—सं०२-पृ०५०, सं०३-पृ०५०, सं०४-पृ०५०,		विचारोंपर नियन्त्रण (पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल) सं०५-पृ०९
, , ,	सं०५-पृ०५०, सं०६-पृ०४७, सं०७-पृ०५०, सं०८-पृ०५०, सं०९-		विद्या-प्राप्तिके महत्त्वपूर्ण सूत्र [एक कल्याणप्रेमी] सं०६-पृ०१९
	पृ०५०, सं०१०-पृ०५०, सं०११-पृ०५०, सं०१२-पृ०४६		विपत्तियोंका सामना धैर्यसे करें
928-	मनुष्य-जीवनके कुछ दोष (नित्यलीलालीन	, , , ,	(श्रीरमेशचन्द्रजी बादल) सं०८-पृ०२३
114	श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) सं०७-पृ०१२	283-	विरह (श्रीइन्दरचन्दजी तिवारी) सं०१०-पृ०२६
9 D(9-	ममताके रोगकी चिकित्सा (मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामिकंकरजी		वृक्षारोपण–माहात्म्य (पं० श्रीवासुदेवकृष्णजी चतुर्वेदी,
, , ,	उपाध्याय) [प्रेषक—श्रीअमृतलालजी गुप्ता] सं०८-पृ०९	143	व्याकरण-पुराणेतिहासाचार्य, एम०ए०, साहित्यरत्न) सं०७-पृ०२५
22/-	महल नहीं, धर्मशाला सं०४-पृ०२५	ያह4 –	वृद्धावस्था (वैद्य श्रीमोहनलाल गुप्तजी) सं०६-पृ०२७
	महर्षि वसिष्ठजीको नमस्कार सं० ११-पृ २४		च्यक्तिका कल्याण और सुन्दर समाजका निर्माण
	महागौरी [आवरणचित्र-परिचय] सं०१०-पृ०६	144	(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) सं०१०-पृ०३५
	महात्माओंका प्रभाव	9 = 19 _	व्रतोत्सव-पर्व—
< 4 < -	(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) सं०८-पृ०७	740	प्रतासिय चय- [चैत्रमासके व्रतपर्व] सं०२-पृ०४५, [वैशाखमासके व्रतपर्व] सं०३-
027	पद्मकारा परम श्रेञ्जय श्राजयदेवाराजा गायग्देका) सण्ट-४०० महात्माओंको महिमा		पुठ४५, [ज्येष्ठमासके व्रतपर्व] सं०४-पृठ४५, [ज्येष्ठमासके व्रतपर्व]
< 4 4 -	(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) सं०७-पृ०७		सं०५-पृ०४५, [आषाढ्मासके व्रतपर्व] सं०६-पृ०४२, [श्रावणमासके
0 2 2	•		व्रतपर्व] सं०७-पृ०४५, [भाद्रपदमासके व्रतपर्व] सं०८-पृ०४५,
	महात्मा पूनतानम् [संत-चरित] (श्रीरामलाल) सं०८-पृ०३३		
	महाभारत-लेखन [आवरणचित्र-परिचय] सं०१२-पृ०६		[आश्विनमासके व्रतपर्व] सं०९-पृ०४३, [कार्तिकमासके व्रत-पर्व]
१३५-	महाशिवरात्रिव्रतको कथा और माहात्म्य		सं०१०-पृ०४०, [मार्गशीर्षमासके व्रतपर्व] सं०११-पृ०४४, [पौष-
	(आचार्य श्रीरामगोपालजी गोस्वामी,		मासके व्रतपर्व] सं०११-पृ०४५, [माघमासके व्रतपर्व] सं०१२-
0.7.6	एम०ए०, एल०टी०, साहित्यरत्न, धर्मरत्न) सं०२-पृ०३२	0.5.4	पृ०४०, [फाल्गुनमासके व्रतपर्व] सं०१२-पृ०४१
१३६-	मानव-जीवनका सर्वोत्तम कार्य	१६८-	. शरणागति– तत्त्व
	(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) सं०४-पृ०७	0.5.0	(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) सं०७-पृ०३६
१३७-	मानसमें माँ सरस्वतीको महिमा		शेषावतार भगवान् बलराम [आवरणचित्र-परिचय] सं०५-पृ०६
07.	(श्रीराजकुमारजी अरोड़ा)सं०२-पृ०२८		श्रमका फल [प्रेरक-प्रसंग]सं०९-पृ०४२
	मानस रोग (श्रीगोपालदत्तजी सारस्वत) सं०८-पृ०२८	१७१-	श्रीकनकभवन—भगवान् श्रीरामका लीला-निकेतन
X 2 X -	मानसिक शक्तिसे रोगोंका उपचार (श्रीलालजी रामजी शुक्ल, एम०ए०) सं०८-पृ०१७	0102	[आवरणचित्र-परिचय] सं०३-पृ०६ श्रीकृष्णप्रेमभिखारी [सन्त-चरित]
9 🗸 2	पुत्रिलालजा रामजा सुक्ल, ६म०६०)स०८-४०८७ मुक्तिके प्रति भी निष्कामता [प्रेरक-प्रसंग] सं०५-पृ०१६	र७५-	- त्राकृष्णप्रमामखारा [सना- पारत] (श्रीराधेश्यामजी बंका)सं०७–पृ०३७
	-मुक्तिक प्रात मा निकामता [प्ररक-प्रसग] सण्प-पृण्रद -मूर्ति या छिबमें भगवान्	0/03	· श्रीकृष्ण-लीलाके अन्ध-अनुकरणसे हानि (नित्यलीलालीन
ζοζ-	-मूत या छाषम मगपान् (रायसाहेब श्रीकृष्णलालजी बाफणा)सं०३-पृ०३६	१७२-	श्रकुः व्यानसाराक अन्यन्जपुकरणस हाम (नायसासाराम श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)सं०८-पृ०१३
0 > 2	मेरे कारण कोई झूठ क्यों बोले [प्रेरक-प्रसंग] सं०३-पृ०१८	010~	त्रक्षय नार्शा त्रारुपुनाग्रसादणा नाहार)स०८-४०५२ श्रीगुरु गोरखनाथजीका जीवन-दर्शन
	मेरे माँझी! (श्रीइन्दरचन्दजी तिवारी) सं०५-पृ०३०	ζ Θ δ –	- त्रानुरु नारखनायजाका जापन-दरान (साहित्याचार्य रावत श्रीचतुर्भुजदासजी चतुर्वेदी) सं०२–पृ०३५
	'मेरे माँबरे! तेरी कृपा है' (डॉ० श्रीगोपालजी नारसन)	9/01.	· श्रीचैतन्यका महान् त्याग [प्रेरक-प्रसंग]सं०६-पृ०१३
ζοο-	[प्रेषक—श्रीनन्दिकशोरजी मित्तल]सं०४-पृ०२८		- श्रीप्रयागाष्टकम् सं०१२-पृ०३१
9 🗸 1.	मैडम ब्लैवट्स्कीकी परदु:खकातरता [प्रेरक-प्रसंग] सं०५-पृ०१९		श्रीभगवन्नाम–जपको शुभ सूचनासं०१०–पृ०४१
		9/07	श्रीभगवन्नाम–जपके लिये विनीत प्रार्थनासं०१०–५०४४
	मैं तुम्हारे अंग-संग हूँ [प्रे०—श्री एम०के० रायजी].सं०३-पृ०२३ मोह रोगकी चिकित्सा		
ζ 8 Θ =	भाह रागका । याकरला (मानस–मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय) सं०११–पृ०१३	ζ G ζ =	- श्रीभास्करराय (भासुरानन्दनाथ) [संत–चरित] (श्री 'मातृशरण') सं०९–पृ०३५ सं०९–पृ०३५ सं०९–पृ०३५
0 > / /	योगवासिष्ठका मन्तव्य (श्रीगोपालजी 'स्वर्णकिरण').सं०७-पृ०२०	0.4.5	· श्रीराम और भरतका अनिर्वचनीय प्रेम
		ζζ0-	· त्राराम जार मरतका जानपंपनाय प्रम (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) सं०१०–पृ०७
302-	योगवासिष्ठमें प्रारब्ध और पुरुषार्थ-विवेचन	0 / 0	
91.0	(श्रीरामिकशोरसिंहजी 'विरागी') सं०११-पृ०२२		श्रीरामचरितमानसमें वर्णित मानस रोग सं०८-पृ०३० श्रीरामचरितमानसमें शक्तितत्त्वनिरूपण
	रामकथाकी महिमा सं०५-पृ०१४ रामकथाके श्रवणका उद्देश्य	५८५-	
५५१-	रामकथाक श्रवणका उद्दश्य (मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय) सं०५-पृ०१३	9/3	(श्रीराधानन्दिसंहजी)सं०१०-पृ०३० श्रीरामराज्यकी महिमा (श्रीअर्जुनलालजी बंसल) सं०८-पृ०२६
91. 7			
	रामको शंकाका निवारण (डॉ० श्रीमती मीनाजी गुप्ता).सं०११-पृ०३१	५८४-	श्रीसूरदासजीका होली-वर्णन (गुं. श्रीणुक्तगुशनी दुवे) गुं. गुं. गुं. गुं. गुं. गुं. गुं. गुं.
८५३-	राम पदारबिंदु अनुरागी—श्रीलक्ष्मण	9 / 1.	(पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)सं०३-पृ०१९
91.~	(श्रीजगदीशप्रसादजी गुप्ता)सं०७-पृ०२७ रुद्राक्षकी उत्पत्ति, धारण-विधि और माहात्म्य सं०७-पृ०३०	५८५-	·सत्यका स्वरूप (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) सं०५-पृ०२५
	लक्ष्मी कहाँ रहती हैं ?	9/5	् प्रह्मतान श्रद्धव स्वामा श्राशरणानन्दजा महाराज) सण्प-पृण्यप् - सत्संगको महिमा
८५५-	. लक्ष्मा कहा रहता ह <i> ?</i> (धर्मभूषण पं० श्रीमुकुटविहारीलालजी शुक्ल) सं०५-पृ०३५	५०५-	· संत्सनका भारुमा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) सं०६–पृ०७
	(यममूत्रम पण प्रामुखादायहाराताताचा सुकरा) सण्य-पृण्इप		(अलराम परम अस्त्र आजपद्याराणा गायन्द्यमा) सण्द-पृष्ठ

	[4)]		
	विषय पृष्ठ-संख्या	विषय		पृष्ठ-संख्या
१८७-	सपनोंको यथार्थमें कैसे बदलते हैं ?	२०१ – संतकी वि	त्रचित्र असहिष्णुता	सं०२-पृ०१८
	(श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला) सं०३-पृ०३१		ग्हनशीलता [प्रेर् क-प्रसंग]	
१८८-	सबका कल्याण हो! (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी		नामृत (वृन्दावनके गोलोकवासी संत्	• (
	श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)सं०१०-पृ०११		दास भक्तमालीजीके उपदेशपरक पत्रो	
	सबसे अपवित्र है क्रोध [प्रेरक-प्रसंग] सं०४-पृ०३९		पृ०२७, सं०्११-पृ०३०, सं०१२-पृ०	
	सभीका ईश्वर एक [प्रेरक-प्रसंग] सं०९-पृ०३०		वराहा बाबाके वचनामृत (वैकुण्ठवास	गश्राश्रा
१९१-	- सरयू रामायणके हनुमान्		श्रीगोकुलदासजीद्वारा संकलित)	_•
	(डॉ॰ श्री ए॰ बी॰ साईप्रसादजी) सं०१०-पृ०२३		-श्रीललनप्रसादजी सिन्हा]	
१९२-	सात दिनका मेहमान [कहानी]		मरण (परमपूज्य देवाचार्य श्रीराजेन्द्रदा	
000	(पं० श्रीमंगलजी उद्धवजी शास्त्री, 'सद्विद्यालंकार') . सं०९-पृ०२४		न, ऋषिकेशमें हुए प्रवचनसे साभार)—स् सं १०० मा २१० सं १०० मा २००	स०९-पृ०३१, स०१०-
	- सादगी [कहानी] (श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र') सं०३-पृ०३३		सं०११-पृ०३७, सं०१२-पृ०२९	# #.30
१९४-	साधकोंके प्रति— संगामों स्टोनी विकासिक सुरुष्टी किसामध्यान को नाथ और		क्षिण	
	संसारमें रहनेकी विद्या [सं०३-पृ०१७], निष्कामभावनासे लाभ और		प्रथम सोपान—वाक्संयम [प्रेरक-प्र	
	सकामभावनासे हानि [सं०४-पृ०१६], निष्कामतासे लाभ और सकामतासे हानि [सं०५-पृ०१५], ज्ञानाग्निसे पापोंका नाश [सं०६-	- १९५५	-श्रीअरुणजी गुप्ता] सुखोंकी अनित्यता [बोध-कथा]	स०८-५०३२
	पृ०१७], मुक्ति [सं०७-पृ०१७], सत् और असत् [सं०८-पृ०१५],		सुखाका जानत्यता [बाय-कया] की दो धाराएँ [पर्यावरण-चिन्तन]	स०३-४०१०
	वृष्ट्रिका, मुक्कि [सण्ड-पृष्ट्रिक], सत् आर असत् [सण्ड-पृष्ट्रिक], केवल भगवान् ही अपने हैं [सं०९-पृ०२१] शरणागतिका तत्त्व		का दा वाराए [पयापरण=।यनाम्] नालजी टॉॅंटिया)	то, поэ∠
	[सं०१०-पृ०१५], संसारसे निराशा, भगवानुकी आशा [सं०११-) ग्रीनम्पर स्टान्स	गोदर्शनका फलगोदर्शनका फल	3γοφ-ροη
	पृ०१७], नित्य-प्राप्त परमात्म-तत्त्व [सं० १२-पृ० १७]		गवेकानन्दने कहा था	400 7084
994_	- साधन-सूत्र (आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा) सं०५-पृ०२०		ोशोभनाथलाल 'सौमित्र')	ม่ดงจ-บดจะ
	साधनामें दैन्यभावका महत्त्व (नित्यलीलालीन श्रद्धेय		रावरामिकंकर योगत्रयानन्दजी [सन्त-	
114	भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) सं०९-पृ०१४		महेन्द्रनाथजी भट्टाचार्य)	
१९७-	- साधनोपयोगी पत्र — सं०२-पृ०४३, सं०३-पृ०४३, सं०४-पृ०४३,		ार्वशुद्धानन्दजी सरस्वती [संत-चरित	
1,1-	सं०५-पृ०४३, सं०६-पृ०४०, सं०७-पृ०४३, सं०८-पृ०४३, सं०९-		ोपाध्याय पं० श्रीप्रमथनाथजी तर्कभूष	
	पृ०४४, सं०१०-पृ०३८, सं०११-पृ०४२, सं०१२-पृ०३८		:ख कैसे दूर हो?	.,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,
१९८-	- साँड देवता [कहानी] (श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र') . सं०७-पृ०४०		नी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज)	सं०५-प०१७
१९९-	. सिद्धावधूत श्रीदयालदास स्वामी सं०५-पृ०३८		रह कीमती कैसे बनें	
	सूर्यस्नानका आनन्द (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) सं०१२-पृ०१४		ारामजी गुप्ता)	सं०६-पृ०३४
	संकलित	–सामग्री		
१ –	'अधर धरि मुरली स्याम बजावत' सं०८-पृ०३	७- राजा चिः	त्रकेतुको भगवान् शेषके दर्शन	सं०१०-पृ०३
	काशीमुक्ति सं०२-पृ०३		र शशिवर्ण भगवान्	
	गणपति-स्तवन सं०९-पृ०३	•	ध्यान	सं०५-प०३
	'झूलत राम पालने सोहैं' सं०६-पृ०३	९- श्रीसीता-	-अनसूया-मिलन	सं०७-प०३
	नारदजीका भक्तिको उपदेश सं०३-पृ०३		ृतराष्ट्र-संवाद	
	परशुराम-लक्ष्मण-संवाद सं०४-पृ०३			
		•••	3	
	पद्य-	सूची		
۶ –	गोपियोंके स्वर (श्रीमती करुणा मिश्रा) सं०९-पृ०३१	•	भवन-बिहारीकी छबि-माधुरी	सं०३-प०७
	'जो मोहि राम लागते मीठे' सं०११-पृ०२६	१०- श्रीसरस्व		٠ و
	'तू दे ऐसा वरदान मुझे'		ोमनोजकुमारजी तिवारी 'तत्त्वदर्शी')	सं०२-प०२७
٧	्रूप २००१ पर्या पुरा (श्रीमहेशचन्द्रजी त्रिपाठी)सं०४-पृ०१७	११- श्रीहनुमान		// 2 /-
v _	'प्यारे! राम रसायन पी ले'		· `ॹॖॱॱ द्रसिंहजी 'गुरुदास.')	ਸ਼ੌਂਨ X-ਧਨ 96
٥-		१२ - मटाव्हेण	्(गिरधर कविराय)	ργος ο ορ οιεοπ_εο π
	(आचार्य श्रीभगवतजी दुबे)सं०४-पृ०२९	१२ लेखुनपरा	ॅागरवर कावराव) ऊँची प्रेम सगाई' [सूरसागर]	Osof sob
4-	बालरूप रामकी झाँकी			स०५-पृ०३०
_	(श्रीसनातन कुमारजी वाजपेयी 'सनातन') सं० १०-पृ० १९	१४- संतोंका व		
ξ-	भगवान् कृष्णका प्राकट्य (श्रीरामेश्वरजी पाटीदार)		वरितमानस)	स० ५-५० ३७
	[प्रेषक—श्रीअशोकजी चौरे]सं०८-पृ०४२		ारम महादेव प्रभू '	
9-	योगिराज शिवका सौन्दर्य		कुमारसिंहजी 'शिवम')	स०१०-पृ०१०
	(श्रीशरदजी अग्रवाल, एम०ए०) सं०२-पृ०२३	१६- हे हुलसी		<u>.</u>
Ήī	nduism Discord Server https://dsc.gg/dh	arma (हा औ	ADEWITH LOVE BY	¨Avinash/Sha

नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार

सरल गीता (कोड 2178) सजिल्द, श्लोकार्थसिहत, [पुस्तकाकार]— प्रस्तुत पुस्तकको गीताजीका सही उच्चारण सीखनेवाले सामान्य पाठकोंको सुविधाके लिये प्रत्येक चरणके कठिन शब्दोंको सामासिक चिह्नोंसे अलग करके दो रंगोंमें छापा गया है। इससे श्लोकके प्रत्येक चरणको समझनेमें सहायता मिलेगी। मूल्य ₹50 (कोड 2099) अजिल्द मूल्य ₹35, (कोड 2164) गुजराती। मूल्य ₹35 (मराठी, ओड़िआ, नेपाली, अंग्रेजीमें भी उपलब्ध)

दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ [रंगीन] (कोड 2177) (असमिया)— इस पुस्तकमें उत्कृष्ट आदर्शोंके प्रेरणास्रोत 23 दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाओंके छोटे-छोटे सचित्र चरित्र प्रकाशित किये गये हैं। विभिन्न सद्गुणोंके प्रेरक ये चरित्र बालक-बालिकाओंके लिये पठनीय तथा उपयोगी हैं। मूल्य ₹15

महाकुम्भ-पर्व (कोड 1300) पुस्तकाकार—इस पुस्तकमें महाकुम्भ-पर्वके उद्भव-विकास एवं माहात्म्यका वेदों एवं पुराणोंके आधारपर सरल भाषामें सुन्दर परिचय दिया गया है। पुस्तकके अन्तमें तीर्थोंमें पालनीय नियमोंका भी उल्लेख किया गया है। मुल्य ₹5

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित—व्रत-कथाओंकी पुस्तकें

व्रत-परिचय (कोड 610)—प्रस्तुत पुस्तकमें प्रत्येक मासमें पड़नेवाले व्रतोंके विस्तृत परिचयके साथ उन्हें सही ढंगसे सम्पादित करनेकी विधि दी गयी है। इसके अतिरिक्त इसमें परिशिष्ट प्रकरणके अन्तर्गत अधिमासव्रत, संक्रान्तिव्रत, अयनव्रत, पक्षव्रत, वारव्रत, प्रायश्चित्तव्रत तथा अन्तमें वटसावित्री, मङ्गला गौरी, संकष्टचतुर्थी, ऋषिपञ्चमी, शिवरात्रि आदि विभिन्न व्रतोंकी सुन्दर कथाएँ दी गयी हैं। मूल्य ₹50

एकादशीव्रतका माहात्म्य (मोटा टाइप) कोड 1162—इस पुस्तकमें पद्मपुराणके आधारपर 26 एकादशियोंके माहात्म्य तथा विधिका बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है। मूल्य ₹25

वैशाख-कार्तिक-माघमास-माहात्म्य (कोड 1136)—शास्त्रोंमें माघ, कार्तिक तथा वैशाखमासका विशेष महत्त्व है। इन महीनोंमें किये गये पुण्य अक्षय होते हैं। इस पुस्तकमें पद्मपुराण तथा स्कन्दपुराणमें वर्णित इन तीनों महीनोंके माहात्म्यका वर्णन किया गया है। मूल्य ₹40

श्रावणमास-माहात्म्य [सानुवाद] (कोड 1899)—इसमें सोमवार आदि प्रत्येक दिनके व्रतोंके सुन्दर विवेचनके साथ मंगलागौरी, स्वर्णगौरी, दूर्वागणपित, संकटनाशन, नागपंचमी, रक्षाबन्धन आदि व्रतोंका सुन्दर वर्णन है। मूल्य ₹35

श्रीसत्यनारायणव्रतकथा (कोड 1367)—इस पुस्तकमें भगवान् सत्यनारायणके पूजनविधिके साथ स्कन्दपुराणसे उद्धत सत्यनारायणव्रतकथाको भावार्थसहित दिया गया है। मृल्य ₹15

गीता-दैनन्दिनी — (सन् 2019) के सभी संस्करण उपलब्ध मँगवानेमें शीघ्रता करें

(प्रकाशनका मुख्य उद्देश्य—नित्य गीता-पाठ एवं मनन करनेकी प्रेरणा देना।)

(Appleional agest order 1114 1111 110 /4 1111 41/1441 X		
	डाव	n खर्च
पुस्तकाकार—विशिष्ट संस्करण (कोड 1431)—गीता-मूल, हिन्दी-अनुवाद,	मूल्य ₹80	₹25
" (बँगला अनुवाद (कोड 1489), ओड़िआ अनुवाद (कोड 1644),		
तेलुगु अनुवाद (कोड 1714)	मूल्य ₹80	₹25
सुन्दर प्लास्टिक आवरण (कोड 503)—गीताके मूल श्लोक एवं सूक्तियाँ	मूल्य ₹65	₹25
पॉकेट साइज— सजिल्द आवरण (कोड 506)— गीता-मूल श्लोक,	मूल्य ₹35	₹20



रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2017-2019

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2017-2019

पाठकोंके लिये आवश्यक सूचना

- 1. 'कल्याण' एवं 'गीताप्रेस-पुस्तक-बिक्री-विभाग' की व्यवस्था अलग-अलग है। अतः केवल कल्याणके लिये कल्याण विभागको एवं पुस्तकोंके लिये पुस्तक-बिक्री-विभागको पत्र तथा मनीऑर्डर आदि अलग-अलग भेजना चाहिये। पुस्तकोंके ऑर्डर, डिस्पैच अथवा मूल्य आदिकी जानकारीके लिये पुस्तक प्रचार-विभागके फोन (0551) 2331250, 2334721 नम्बरोंपर सम्पर्क करें।
- 2. कल्याणके पाठकोंकी सुविधाके लिये कल्याण-कार्यालयमें दो फोन 09235400242/09235400244 उपलब्ध हैं। इन नम्बरोंपर प्रत्येक कार्य-दिवसमें दिनमें 9:30 बजेसे 12:30 बजेतक एवं 2.00 बजेसे 5.00 बजेतक सम्पर्क कर सकते हैं अथवा kalyan@gitapress.org पर e-mail भेज सकते हैं। इसके अतिरिक्त नं० 9648916010 पर SMS एवं WhatsApp की सुविधा भी उपलब्ध है।
- 3. कल्याणके सदस्योंको मासिक अङ्क साधारण डाकसे भेजे जाते हैं। अङ्कोंके न मिलनेकी शिकायतें बहुत अधिक आने लगी हैं। सदस्योंको मासिक अङ्क भी निश्चित रूपसे उपलब्ध हो, इसके लिये सन् 2019 के लिये वार्षिक सदस्यता-शुल्क ₹250 के अतिरिक्त ₹200 देनेपर मासिक अङ्कोंको भी रजिस्टर्ड डाकसे भेजनेकी व्यवस्था की गयी है।
 - 4. कल्याणके मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ सकते हैं।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो०-गीताप्रेस, गोरखपर—273005 (उ०प्र०)

प्रयागमें महाकुम्भ-पर्व

इस वर्ष महाकुम्भ-पर्वका दुर्लभ सुयोग प्राप्त है। श्रद्धालुओंको चाहिये कि इस वर्ष पौष शुक्ल पूर्णिमा (21 जनवरी 2019 ई०)-से माघ शुक्ल पूर्णिमा (19 फरवरी 2019 ई०)-तक पूरे एक माहतक कल्पवासी बनकर प्रयागमें रहें और श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पुण्यतोया त्रिवेणीमें नित्यप्रति स्नान-लाभ करते हुए धर्मानुष्ठान, सत्संग तथा दान-पुण्य करें। महाकुम्भ-पर्व-मेलामें गीताप्रेसके द्वारा पुस्तकोंका विशेष स्टॉल लगाकर यथासम्भव अपने प्रकाशनोंको प्रदर्शित एवं उपलब्ध करानेकी चेष्टा है। महाकुम्भ-पर्वके स्नानके मुख्य पर्व इस प्रकार हैं—

अर्धकुम्भ-स्नानकी मुख्य तिथियाँ इस प्रकार हैं—

1.	मकर-संक्रान्ति	दिनांक 15-01-2019 ई०	मंगलवार
2.	पौष शुक्ल पूर्णिमा	दिनांक 21-01-2019 ई०	सोमवार
3.	मौनी अमावस्या	दिनांक 04-02-2019 ई०	सोमवार
4.	वसन्तपंचमी	दिनांक 10-02-2019 ई०	रविवार
5.	रथसप्तमी	दिनांक 12-02-2019 ई०	मंगलवार
6.	माघीपूर्णिमा	दिनांक 19-02-2019 ई०	मंगलवार

इस अवसरपर **महाकुम्भ-पर्व (कोड** 1300) पुन: प्रकाशित किया गया है।